अप्रैल १९६४

५० नये पैसे

★ ★

ह. भ. प. प्रा. सोनोपंत दांडेकर

वर्ष ४५

वैदिक धर्म

अंक ४

क्रमांक १८३ : अप्रैल १९६४

संपादक
पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

विषयानुक्रमणिका

१ ऐश्वर्य प्राप्तिका मार्ग (वैदिक प्रार्थना) १०७

२ महाभारतका एक रोचक प्रसंग
श्री मुनिदेव उपाध्याय १०८

३ मानवकी स्वाधीनताके लिये श्री श्रीकृष्णदत्त ११०

४ महर्षि दयानन्दका प्रभाव
श्री पंडित दीनबन्धु शास्त्री ११३

५ आत्मोन्नतिके सोपान श्री लालचन्द ११५

६ संस्कार प्रणालीका उदय और विकास
श्री दुर्गाशंकर त्रिवेदी ११८

७ पुरुष प्रजापति श्री वासुदेवशरणजी अग्रवाल १२१

८ गायत्री ,, १२३

९ वैदिक ऋचाओंकी ओजस्विता
श्री पं. वेदव्रत शर्मा शास्त्री १२९

१० स्वाध्याय श्री विश्वामित्र वर्मा १३७

११ धर्मकी महत्ता श्री शिवनारायण सक्सेना १३९

१२ संसारपर विजय कौन प्राप्त कर सकता है?
श्री भास्करानन्द शास्त्री १४१

विशेष सूचना

हमारी नई त्रैमासिक संस्कृत-पत्रिका "अमृतलता" जो मार्चके मध्यमें निकलनेवाली थी, केन्द्रीय सरकारके कुछ वैधानिक अडचनोंके कारण समय पर प्रकाशित नहीं हो पाई। अब वह अप्रैलके द्वितीय सप्ताहमें प्रकाशित होगी। कृपया ग्राहक नोट कर लें। विलम्बके लिए हम क्षमा-प्रार्थी हैं।

स्वाध्यायमण्डलके वैदिक प्रकाशन

वेदोंकी संहिताएं

'वेद' मानवधर्मके आदि और पवित्र ग्रंथ हैं। हरएक आर्य धर्मीको अपने संग्रहमें इन पवित्र ग्रंथोंको अवश्य रखना चाहिये।

सूक्ष्म अक्षरोंमें मुद्रित	मूल्य	डा.व्य.
१ ऋग्वेद संहिता	१०)	१)
२ यजुर्वेद (वाजसनेयि) संहिता	२)	.५०
३ सामवेद संहिता	३)	.५०
४ अथर्ववेद संहिता	६)	.७५
बडे अक्षरोंमें मुद्रित		
५ यजुर्वेद (वाजसनेयि) संहिता	४)	.५०
६ सामवेद संहिता	३)	.५०
७ यजुर्वेद काण्व संहिता	५)	.७५
८ यजुर्वेद तैत्तिरीय संहिता	१०)	२)
९ यजुर्वेद मैत्रायणी संहिता	१०)	१.२५
१० यजुर्वेद काठक संहिता	१०)	१.२५

दैवत-संहिता

एक एक देवताके मंत्रोंका अध्ययन करनेसे वेदमंत्रोंके अर्थका ज्ञान ठीक तरह तथा शीघ्र हो सकता है। इसलिये ये देवता-मंत्र-संग्रह मुद्रित किये हैं।

१ दैवत संहिता– (प्रथम भाग)

अग्नि-इन्द्र-सोम-मरुद्देवताओंके मंत्रसंग्रह।

(अनेक सूचियोंके समेत एक जिल्दमें)	१२)	२)
१ अग्नि देवता मंत्रसंग्रह	६)	१)
२ इंद्र देवता मंत्रसंग्रह	७)	१)
३ सोम देवता मंत्रसंग्रह	३)	.५०
४ मरुद्देवता मंत्रसंग्रह	२)	.५)

२ दैवत संहिता– (द्वितीय भाग)

अश्विनौ-आयुर्वेद प्रकरण-रुद्र-उषा-अदिति-विश्वेदेव। इन देवताओंके मंत्रसंग्रह।

अनेक सूचियोंके साथ एक जिल्दमें)	१२)	२)
१ अश्विनौ देवता मंत्रसंग्रह	३)	.५०
२ आयुर्वेद प्रकरणम् मंत्रसंग्रह	५)	१)
३ रुद्रदेवता मंत्रसंग्रह	१.७५	.५०
४ उषा देवता मंत्रसंग्रह	१.७५	.५०
५ अदितिः आदित्याश्च मंत्रसंग्रह	३)	१)
६ विश्वेदेवाः मंत्रसंग्रह	५)	१)

३ दैवत संहिता– (तृतीय भाग)

४ उषा देवता (अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ)	४)	.५०
५ अश्विनौ देवताका मंत्रसंग्रह (अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ)	४)	.५०
६ मरुद्देवताका मंत्रसंग्रह (अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ)	५)	.७५

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(अर्थात् ऋग्वेदमें आये हुए ऋषियोंके दर्शन।)

१ से १८ ऋषियोंका दर्शन (एक जिल्दमें)	१६)	२)

(पृथक् पृथक् ऋषिदर्शन)

१ मधुच्छन्दा	ऋषिका	दर्शन	१)	.२५
२ मेधातिथि	,,	,,	२)	.२५
३ शुनःशेप	,,	,,	१)	.२५
४ हिरण्यस्तूप	,,	,,	१)	.२५
५ काण्व	,,	,,	२)	.२५
६ सव्य	,,	,,	१)	.२५
७ नोधा	,,	,,	१)	.२५
८ पराशर	,,	,,	१)	.२५
९ गोतम	,,	,,	२)	.३७
१० कुत्स	,,	,,	२)	.३७
११ त्रित	,,	,,	१.५०	.३१
१२ संवनन	,,	,,	.५०	.१२
१३ हिरण्यगर्भ	,,	,,	.५०	.१२
१४ नारायण	,,	,,	१)	.२५
१५ बृहस्पति	,,	,,	१)	.२५
१६ वागाम्भृणी	,,	,,	१)	.२५
१७ विश्वकर्मा	,,	,,	१)	.२५
१८ सप्त ऋषि	,,	,,	.५०	.१२
१९ वसिष्ठ	,,	,,	७)	१)
२० भरद्वाज	,,	,,	७)	१.५०

मन्त्री— 'स्वाध्याय मण्डल, पोस्ट— 'स्वाध्याय मण्डल (पारडी)' [जि. सूरत]

वैदिकधर्म

ऐश्वर्य प्राप्तिका मार्ग

ॐ अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्
विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो
भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम॥
(यजु. ५।३६)

हे अग्ने ! तू (राये) उत्तम ऐश्वर्यकी प्राप्तिके लिए (अस्मान्) हमें (सुपथा नय) उत्तम मार्गसे ले चल। हे देव ! तू हमारे (विश्वानि वयुनानि विद्वान्) सब कामोंको जानता है, इसलिए (जुहुराणं अस्मत्) हवन करनेवाले हमें (एनः युयोधि) पापोंसे दूर कर, हम (ते) तेरे लिए (भूयिष्ठां नमः उक्तिं) बार बार नमस्कारके वचन (विधेम) बोलते हैं।

वह अग्निदेव सबोंका नेता है, वह प्रसन्न होनेपर लोगोंको ऐश्वर्य प्रदान करता है। वह सर्वव्यापक भी है। इसलिए वह हमारे अन्दर और बाहरके सब काम जानता है। इस कारण मनुष्य उससे कुछ भी छिपाकर नहीं रख सकता। उसकी उपासनासे मनुष्य पापोंसे दूर होता है।

पापसे दूर होनेके लिए 'परमेश्वरकी उपासना व उसकी कृपा-प्राप्ति' यह एक उत्तम साधन है।

❀ ❀ ❀
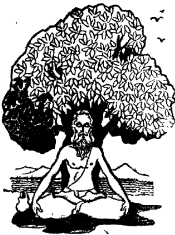
महाभारतका एक रोचक प्रसङ्ग

(द्रौपदी युधिष्ठिर-संवाद)

[लेखक— श्री मुनिदेव उपाध्याय, अजमेर (राजस्थान)]

सम्पूर्ण महाभारतमें श्रीकृष्णके अलौकिक चरित्रको जहां प्रतिपादित किया गया है वहां धर्मराज युधिष्ठिरका चरित्र भी स्वतःमें एक आदर्श है। महाराज युधिष्ठिर सौम्य, सत्यमना, धैर्यके पारावार, कर्तव्यपरायण व्यक्तिके रूपमें अपना जो आदर्श प्रस्तुत करते हैं वह सच ही हृदयको छू डालता है। जितनी कूटनीति चाणक्यनीतिमें पायी जाती है उससे कहीं अधिक, अधिक नहीं तो समान ही कह लीजिए, महाभारतमें स्थल स्थल पर देखनेमें आती है।

धर्म और अधर्मका स्वरूप, राजनीति कर्तव्य, अकर्तव्य, सहिष्णुता, असहिष्णुता, न्याय, अन्याय, सत्य, असत्य, मित्र और शत्रुके भेद, राष्ट्रविप्लवके समय प्राणीमात्रके कर्तव्य सभीके विषयमें महाभारतमें जो वर्णन प्रदर्शित है, वह सर्वथा मननीय है।

महाभारतकी कथाके मूलमें मुख्यतः यही बात है कि स्वार्थान्ध मानव अपने थोडेसे स्वार्थ और भोगलिप्सामें अपनेको ही नष्ट करने पर तुल जाता है। धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधनने इसी प्रकार पाण्डुपुत्रोंसे छल कपट व अन्यायसे राज्य छीननेकी चेष्टा की। धृतराष्ट्र जन्मसे ही नेत्रहीन थे और पाण्डु ही राज्यासीन थे। जब दुर्योधनने देखा किसी भी प्रकारसे पाण्डव अपने राज्यको नहीं सौंपते, तब मामा शकुनी की सहायतासे जुएके खेलका ढोंग रचाकर पाण्डवोंको पराजित करनेकी उसकी चाल सफल हुई और पाण्डवोंको हराकर उसने दुःशासनके द्वारा भरी सभामें द्रौपदीका चीरहरण करवाया। यद्यपि वह इस कुकृत्यमें सफल नहीं हुआ तथापि अपनी नीचताके प्रदर्शनमें उसने कोई कमी नहीं रखी। पाण्डवोंको बारह वर्षका वनवास (एक वर्ष अज्ञातवास सहित) देकर कहा—जाओ बारह वर्षके उपरान्त लौटकर हमसे राज्य मांगना।

उपर्युक्त कथावस्तु महाभारतकी है और इस बातकी द्योतक है कि सर्वदा ही जीवनमें सरलतासे कार्य नहीं चलता। भाई-भाई, पिता-पुत्र, पति-पत्नी सभी सब सीमामें रहते हुए अपने कर्तव्यका पालन करें तभी आदर्श स्थापित हो सकता है।

महाभारतमें धर्मराज युधिष्ठिरकी नीति बहुत ही शान्तिदायिनी रही है। यहां तक कि अपनी पत्नी द्रौपदीके चीरहरण पर भी वह अर्जुन तथा भीम सदृश महारथी महाबली भाईयोंको शान्त करते रहे और चुपचाप अपनी पत्नीके हृद्विदारक अपमानके दृश्यको देखते रहे। क्षत्राणी द्रौपदी आदर्शोन्मुखी भारतीया नारी थी। अपने पतिकी दयनीय स्थिति इससे बढकर और वह भला क्या देख सकती थी जब कि उसके सन्मुख ही उसे निर्लज्ज किया जा रहा हो। अर्जुन सदृश महाबली भी भाईकी आज्ञासे निर्वीय होकर यह दृश्य देखे यह बात भला कैसे सही जा सकती थी। वनवासके समय जब वह वनको गई, तब महाराज युधिष्ठिरके साथ उसका जो वार्तालाप हुआ, वह इस प्रकार है—

न नूनं तस्य पापस्य दुःखमस्मासु किंचन।
विद्यते धार्तराष्ट्रस्य नृशंसस्य दुरात्मनः॥
या त्वाहं चन्दनादिग्धमपश्यं सूर्यवर्चसम्।
सा त्वां पङ्कमलादिग्धं दृष्ट्वा मुह्यामि भारत॥
शरावमर्दे शीघ्रस्त्वात्कालान्तकयमोपमः।
यस्य शस्त्रप्रतापेन प्रणताः सर्वे पार्थिवाः॥
ध्यायन्तमर्जुनं दृष्ट्वा कस्माद्राजन्न कुप्यसि।
क्षिपत्येकेन वेगेन पञ्चबाणशतानि यः॥
तं ते वनगतं दृष्ट्वा कस्मान्मन्युर्न वर्धते।
श्यामं बृहन्तं तरुणं चर्मिणमुत्तमं रणे॥
नकुलं ते वने दृष्ट्वा कस्मान्मन्युर्न वर्धते।
दर्शनीयं च शूरं च माद्रीपुत्रं युधिष्ठिरः॥

सहदेवं वने दृष्ट्वा कस्माद् क्षमसि पार्थिवं ।
नकुलं सहदेवं च दृष्ट्वा ते दुःखितावुभौ ॥
अदुःखार्हौ मनुष्येन्द्र कस्मान्मन्युर्न वर्धते ।

अपने पाँचों पतिकी उपर्युक्त श्लोकोंमें प्रदर्शित अवस्था पर द्रौपदी शोक करती है और पृथक् पृथक् सभीके महात्म्यको बतला रही है। विशेषकर कौरवोंके अपराधके प्रति युधिष्ठिरको वह उत्तेजित करनेका प्रयास करती है। द्रौपदी चाहती है कि उसके अपमानको उसके पति सहन न करें तथा अपनी राज्यश्रीः पुनः प्राप्त करें। क्षत्रियोंका कर्तव्य है कि वह आततायीसे पृथ्वीकी रक्षा करे। अतएव वह कहती है—

न निर्मन्युः क्षत्रियोस्ति लोके निर्वचनं स्मृतम् ।
तदद्य त्वयि पश्यामि क्षत्रिये विपरीतवत् ॥
यो न दर्शयते तेजः क्षत्रियः काल आगते ।
सर्वभूतानि तं पार्थ सदा परिभवन्त्युत ।
तत्त्वया न क्षमा कार्या शत्रून्प्रति कथञ्चन ॥
तेजसैव हि ते शक्या निहन्तुं नात्र संशयः ॥

क्षत्रिय भी भला कहीं क्रोध रहित होते हैं। जो आज मैं तुझे क्रोधरहित देख रही हूँ। युद्धका समय, रक्षाका समय जब उपस्थित होजावे और तब भी क्षत्रिय अपनी तेजस्विता प्रकट न करे बडे दुःख और आश्चर्यकी बात है।

द्रौपदीने तो यहांतक कह दिया कि वे मूर्ख पराजयको प्राप्त होते हैं जो छली पुरुषोंके साथ भी छल करना नहीं जानते। मायावी पुरुषोंके साथ तो मायावी ही बननेकी आवश्यकता है। सन्धि और समझौतेकी वार्ताका पालन सज्जनों के साथ किया जाना चाहिए। शत्रु लगातार जब छल और कपटमें लगा रहे, तो समझौतेकी प्रतीक्षा करना उचित नहीं है। विजयेच्छुक राजाओंको कपटसे सन्धिविच्छेद करके भी शत्रुको नष्ट कर डालना चाहिये।

द्रौपदी क्रोधमें यद्यपि बहुत कुछ कह गई, अशक्त पुरुषों के हाथमें कहीं राज्यलक्ष्मी ठहरा करती है। उसे तो बलवान् पुरुष चाहिए।

धर्मराज युधिष्ठिर तो शान्तिके समुद्र ही थे। वे जानते थे कि क्रोध और आवेश नाशका कारण बन जाते हैं। अत्यधिक उत्तेजनामें मनुष्य विनाशकी ओर बढता है। क्योंकि—

क्रोधमूलो विनाशो हि प्रजानामिह दृश्यते।
तत्कथं मादृशः क्रोधमुत्सृजेल्लोकनाशनम् ।

क्रोधके अनर्थको दर्शाते हुए धर्मराज क्षमा पर बल देते हैं।

क्षमा धर्मः क्षमा यज्ञः क्षमा वेदाः क्षमा श्रुतम् ।
एतदेवं य जानाति स सर्वं क्षन्तुमर्हति ॥
क्षमा ब्रह्म क्षमा सत्यं क्षमा भूतं च भावि च ।
क्षमा तपः क्षमा शौचं क्षमयेदं धृतं जगत् ॥

क्षमा ही जीवनका सबसे बडा बल है। आप इसका जीवनमें प्रत्यक्ष अनुभव करके देख लीजिए। क्षमासे बढकर कोई धर्म नहीं, क्षमासे बढकर कोई यज्ञ नहीं। क्षमा वेद है। क्षमा ही श्रुतियां हैं। क्षमाकी महत्ता दर्शाते हुए धर्मराज आगे कहते हैं— क्षमा ब्रह्मस्वरूप है। जिस प्रकार ब्रह्म सत्-चित्-आनन्दमय है तथैव क्षमाका रूप है। क्षमा ही जीवनका सत्य है। क्षमा ही तप है। क्षमा ही पवित्रता है तथा क्षमासे ही यह जगत् स्थिर है। क्षमाका स्वरूप अतीव पवित्र है, इसे कभी नहीं भूलना चाहिए।

द्रौपदी महाराज युधिष्ठिरसे उनके शान्तिदायक उपदेशका श्रवण कर पुनः उत्तरमें कहती है—

सिद्धिर्वाप्यथवाऽसिद्धिरप्रवृत्तिरतोन्यथा ।
बहूनां समवाये हि भावानां कर्मसिद्धयः ॥
गुणाभावे फलं न्यूनं भवत्यफलमेव च ।
अनारम्भे हि न फलं न गुणो दृश्यते क्वचित् ॥

महाराज आपका उपदेश ठीक है— परन्तु विजयार्थ और अन्यायके दमन हेतु कोई प्रयत्न भी करेंगे या नहीं। कार्यकी सिद्धि अनेक लोगोंके संमिलित सङ्गठित प्रयत्नसे अवश्य होजाती है। गुणोंके अभावमें फलोंका अभाव होना अस्वाभाविक नहीं है। और यदि प्रयत्न किसी भी वस्तुके लिए प्रारम्भमें ही न किए जावें तो पुनः न तो फल प्राप्त होंगे न फलप्राप्तिकी अपेक्षा ही की जासकती है।

महाकवि भारविने अपने ' किरातार्जुनीयं ' महाकाव्यमें उस घटनाको सविस्तृत प्रतिपादित किया है। उन्होंने जहाँ— ' न तितिक्षा सममस्ति साधनम् ' (शान्तिसे श्रेष्ठ कोई मार्ग नहीं) कहा है, वहाँ ' आर्जवं हि कुटिलेषु न नीति ' (कुटिल व्यक्तियोंके साथ सरलताका व्यवहार कोई नीति नहीं) ' के सिद्धान्तका भी प्रतिपादन किया है।

संक्षेपतः महाभारतका युद्ध अन्यायकी समाप्तिके लिए किया जानेवाला एक विप्लव था। महाभारतमें द्रौपदी युधिष्ठिर-संवादके अतिरिक्त अनेक प्रसङ्ग ऐसे हैं— जो राजनीति व राजतन्त्र पर भी भलीभांति प्रकाश डालते हैं। महाभारत में जहाँ धर्मराज युधिष्ठिरका चरित्र पञ्चशीलके सिद्धान्तोंका प्रतीक है, वहाँ द्रौपदीका त्याग भी कम प्रशंसनीय नहीं है।

मानवकी स्वाधीनताके लिये

(अनुवादक— श्री श्रीकृष्णदत्त, साहित्यरत्न)

[संयुक्त-राज्य अमरीकाके ३५ वें राष्ट्रपति हुतात्मा जान फिट्ज़ेराल्ड केनेडीका राष्ट्रपतिपद ग्रहण करनेके अवसरपर राष्ट्र एवं विश्वके नाम प्रसारित ऐतिहासिक सन्देश]

मेरे नागरिक बन्धुओ,

आज हम एक दलका विजयपर्व नहीं, प्रत्युत् स्वाधीनताके प्रति अपना वह विजयोल्लास व्यक्त कर रहे हैं जो स्वयं प्रतीकात्मक निर्देशक है एक अवसानका और एक शुभारम्भका। यह द्योतक है पूर्ण परिवर्तनका और अभिव्यक्त करता है पुरातनकी ग्राह्यताके प्रति हमारी चिर नवीन आस्थाका। मैंने आपके समक्ष अभी-अभी सर्वशक्तिमान् ईश्वरको साक्षी करते हुये उसी गम्भीर एवं पुनीत प्रणको निभानेकी शपथ ली है जिसका विधान हमारे पूर्वजोंने शताब्दियों पूर्व किया था।

आजका विश्व कठिनाइयोंसे आकीर्ण है, क्योंकि मानवके नश्वर हाथोंमें सब प्रकारके दारिद्य ही नहीं, अपितु स्वयं जीवनका नाश करनेकी क्षमता आ गई है। किन्तु आज भी हमारे पूर्वजोंके वह क्रान्तिकारी मन्तव्य जिनके पुरःस्थापनके लिये वे संघर्ष रत रहे, हमारे सामने उग्ररूपेण सम्मुखीन समस्याओंमें परिगणित हो रहे हैं। उनका सर्वाधिक महत्वपूर्ण मन्तव्य यह था कि मानवने अपने योग्य अधिकारोंको क्षुद्र स्वार्थापेक्षी उदारताके कारण अर्जित नहीं किया है, प्रत्युत् उसका उद्‌गम जगन्नियन्ताका वह दिव्य हाथ है जिसमें वह निसर्गतः सुरक्षित है।

प्रथम क्रान्तिके हम उत्तराधिकारी हैं, इस तथ्यको विस्मृत करनेका दुस्साहस हम नहीं कर सकते। आज, इसी समय और इसी स्थानसे मित्र एवं शत्रुमें समान रूपेण हमारा यह संदेश प्रचारित हो कि स्वातन्त्र्यकी दीपशिखा आज एक ऐसी नवीन और इसी शतीमें उत्पन्न संततिको हस्तान्तरित हुई है जिसके अन्तर्भाव पर अङ्कित है विभीषिकामय युद्धका प्रताप, जिसके अनुशासनकी भावनाको एक कठोर एवं कटुशान्तिने स्वरित एवं मुखरित किया है और कदापि स्वीकार्य नहीं होगी जिसके लिये यह स्थिति कि मानवीय अधिकार शनैः शनैः शोषणापूर्ण उत्कोचका कन्दुक बन कर निष्प्रभ हो जायें। इन अधिकारोंकी रक्षार्थ स्वदेशमें ही नहीं, विश्वमें भी हम वचनबद्ध ही नहीं, कृतसंकल्प भी हैं।

प्रत्येक राष्ट्रसे, चाहे हमारा वह शुभेच्छु है अथवा नहीं, हम बलपूर्वक कहना चाहते हैं कि स्वातन्त्र्यके अस्तित्व एवं उत्कर्षके लिये कोई भी मूल्य चुकाने, किसी भी उत्तरदायित्वका वरण करने, किसी भी कठिनाईका सामना करने, किसी भी मित्रका समर्थन और किसी भी शत्रुका विरोध करनेके लिये हम सर्वदा एवं सर्वत्र कृतसंकल्प हैं। इतना हम वचन देते हैं और इससे अधिक कुछ और भी।

अपने उन प्राचीन मित्रोंको जो सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक मान्यताओंके उत्तराधिकारमें हमारे संविभागी हैं, हम विश्वसनीय मित्रोंकी आस्थाका आश्वासन देते हैं। यदि हम संगठित हैं तो सहकारी प्रतिपत्तियोंके क्षेत्रमें वह स्वल्प है जो निष्पन्न नहीं हो सकता। एक सशक्त चुनौतीका सामना कठिन घड़ियोंमें एकताको भंग कर हम नहीं कर सकेंगे।

सब स्वतन्त्र राष्ट्रोंको हम यह आश्वासन दिलाते हैं कि एक प्रकारके उपनिवेशवादका लोप मात्र इसीलिये नहीं हुआ कि उसका स्थान एक नवीन उत्पीडक उपनिवेशवाद ले। सम्भव है हम उन्हें अपने प्रत्येक मतका समर्थक प्रत्येक स्थल पर न पायें, किन्तु पूर्ण आशा है हमें अपने इस विश्वासके फलीभूत होनेकी कि वह सदैव अपनी स्वाधीनताके उत्कृष्ट समर्थक और जागरूक प्रहरी रहेंगे। सदा स्मरण रहेगा उन्हें यह कि जिन्होंने अतीतमें सिंहकी पीठ पर आरूढ होकर शक्ति

प्राप्त करनेकी दुरूहकल्पना की थी, उन्होंने स्वयमेव अपने अन्तको निमन्त्रण दिया है।

सामूहिक दारिद्र्यके पाशोंके उच्छेदनमें संवर्षरत विश्वके अर्धभागमें ग्रामों एवं झोंपड़ियोंमें रहनेवाले अपने अभिशप्त बन्धुओंको हम मुक्तहस्तसे सहायता देनेकी प्रतिज्ञा करते हैं। यह सहायता हम इसलिये नहीं देंगे कि साम्यवादी उसे दे रहे होंगे, इस कारणसे भी नहीं कि हमें उनके मतोंकी अपेक्षा है। हम देंगे यह सहायता क्योंकि मानवीय एवं नैतिक आधार पर इसका औचित्य एकदम असंदिग्ध है। हमारा यह सुविचारित मन्तव्य है कि एक स्वतन्त्र समाज यदि वह असंख्य दरिद्रोंकी सहायता करनेमें असमर्थ है तो वह स्वल्प धनी व्यक्तियोंकी भी रक्षा नहीं कर सकता।

हमारी सीमाओंके दक्षिणवर्ती अपने बन्धु गणतन्त्रोंसे हम एक विशेष प्रतिज्ञा करते हैं। विपन्नताकी अर्गलासे मानवको मुक्त करने, स्वतन्त्रता प्रिय स्त्री-पुरुषोंकी उन्नत्यर्थ उनके मैत्री सूत्रमें हम सहर्ष आबद्ध होंगे। निस्संदेह हम अपने इन शब्दोंको क्रियामें परिणत करेंगे। किन्तु आशाकी शान्तिपूर्ण क्रान्ति किसी शत्रुतामयी शक्तिकी भोग्या नहीं बन सकती। हमारे सभी पड़ौसियोंको विदित हो कि किसी भी दासतामय आधिपत्य एवं आक्रमणका विरोध करनेमें उनके स्वरमें हम अपना स्वर मिलायेंगे। इसके अतिरिक्त हम सभी देशोंको यह विश्वास दिलाते हैं कि विश्वका यह गोलार्ध किसी पर स्वामित्वका आकांक्षी नहीं है और अपने घरका ही पूर्ण स्वामित्व प्राप्त कर सुतरां संतुष्ट है।

विश्वके स्वाधीन राष्ट्रोंके संघ, संयुक्त राष्ट्र संघ जिसमें अवदात प्रतिफलन है हमारी सुन्दरतम आशाका, आजके युगमें जहां निर्माणकी होड़में युद्धोपकरण शान्तिके उपकरणोंको बहुत पीछे छोड़ गये है, हम पुनर्घोषणा करते हैं अपने अनवरत सहयोगकी एवं व्यक्त करते हैं उसके आदर्शोंके प्रति अपनी श्रद्धा संवलिता आस्था। दृढ़ प्रतिज्ञ हैं हम इस दिशामें उद्यमशील होनेके लिये कि इसे मात्र वितंडा एवं विजल्पका स्थल बननेसे रोका जाये, नवीन एवं दुर्बल राष्ट्रोंकी रक्षा करनेवाली इस ढालको अधिक सशक्त बनाया जाये और विस्तार किया जाये उस क्षेत्रका जहां इसका विधान एक दुर्विनीतका उपहास-कंदुक बन कर तिरस्कृत न हो, प्रत्युत एक सर्वात्मना पालनीय आदेशकी भांति शिरोधार्य हो, समुज्ज्वल क्रियान्वितिकी गरिमासे मंडित हो। अंतमें उन राष्ट्रोंसे जो अपनेको हमारे विरोधियोंकी कोटिमें रखते हैं, हम कोई प्रतिज्ञा नहीं करते, प्रत्युत यह अनुरोध करते हैं कि नयी पद्धतिसे शान्तिकी खोजमें वह हमारा सहयोग दें, पूर्व इसके कि विज्ञान द्वारा निस्सृत दानवी विध्वंसात्मक शक्तियोंमें मानवता योजनाबद्ध रूपेण अथवा दुस्संयोगवश नष्ट हो जाये। हम स्वयं बलहीन होकर इन शक्तियोंको तांडव नर्तनका क्षेत्र प्रदान नहीं करेंगे, क्योंकि हमारे शस्त्रोंके आशंकातीत प्राचुर्यकी स्थितिमें ही निहित है यह आश्वासन कि उन्हें कदापि उपयोगमें नहीं लाया जायेगा।

किन्तु दो महान् एवं शक्तिशाली राष्ट्रोंके गुट मात्र अपनी साम्प्रतिक क्रियासरणिसे आश्वस्त नहीं हो सकते। दोनों पक्ष आधुनिक शस्त्रास्त्रोंके मूल्य भारसे असाधारणतः पीड़ित हैं। घातक अणुशक्तिके क्रमिक विस्तरणसे दोनों पक्षोंका आशंकित होना भी यथार्थ है। किन्तु इन तथ्योंकी विद्यमानतामें भी दोनों प्रतिस्पर्धानुप्रेरित होकर उद्यमशील हैं भयके उस संतुलनमें परिवर्तन लानेके लिये जो मानवताके अंतिम युद्धको रोके हुये है।

अतः आइये, हम नये रूपमें अपने यत्न करें। स्मरण रखना है दोनों पक्षोंको कि शिष्ट व्यवहार लज्जास्पद दुर्बलताका द्योतक नहीं है। सहृदयता सदैव अपनी विश्वसनीयताके लिये प्रमाणकी अपेक्षा रखती है। हम कभी भयके कारण एक दूसरेसे वार्तामें प्रवृत्त न हों, किन्तु इसके साथ ही वार्तामें प्रवृत्त होनेमें भी भयके कारण संकोच न करें। सहृदयतापूर्वक प्रवृत्त हों दोनों पक्ष उन समस्याओंकी खोजमें जो हमें संगठित करती हैं, न कि हम केवल उन्हें ही दृष्टिगत करें जिनके कारण हम दो पृथक् गुटोंमें विभक्त हैं। क्रियाशील हों दोनों पक्ष इस दिशामें कि विज्ञानके नाशकारी पक्षके स्थानपर उसकी अद्भुत कल्याणमयी शक्तियोंका नियोजन किया जाये। हमें सम्मिलित रूपेण प्रवृत्त होना है नक्षत्रोंकी खोजमें, मरुस्थल पर मानवाधिपत्य स्थापित करनेमें, रोगकी निवृत्तिमें, सामुद्रिक गहराईमें पैठनेमें और वाणिज्य, कलाको प्रोत्साहित करनेमें। दोनों पक्ष मिलकर आइजेहके इस निर्देश पर ध्यान दें, 'दुर्वह भारोंसे मुक्त होकर उत्पीडित मानवको स्वतन्त्र होने दो।'

और यदि पारस्परिक सहयोगकी यह स्थिति सुदृढ़ हो जाये और हम संदेहके भयावह दलसे निकल आयें तो दोनों पक्ष एक नई दिशामें तत्पर हों निष्ठापूर्वक, शक्ति संतुलनके

लिये नहीं, प्रस्तुत् एक मांगलिक विधान द्वारा शासित ऐसे विश्वके निर्माणार्थ जहां सशक्त न्याय प्रिय हों, दुर्बल सुरक्षित हों और शान्ति अखंडनीयतासे स्थापित हो।

यह सभी कार्य पहले सौ दिनोंमें संपन्न नहीं हो सकता। न ही इसकी पूर्ति सहस्र दिनोंमें शक्य है। संभव है इस प्रशासनकी अवधिमें भी हम इससे अभिनिवृत्त न हों। हमारे जीवन कालमें भी यह लक्ष्य अप्राप्य ही रहे। किन्तु क्यों न होने दें हम इस कल्याणमयी प्रतिपत्तिका शुभवरण। हमारी इस क्रियासरणि एवं योजनाकी सफलता मेरे नागरिक बन्धुओ, मुझसे अधिक आपके सक्षम करों पर निर्भर है। इस राष्ट्रकी स्थापनासे लेकर अबतक अपनी राष्ट्रभक्तिका प्रमाण देनेके लिये प्रत्येक अमरीकी संततिका आह्वान किया गया है। इस आह्वानका कर्तव्य निष्ठापूर्ण उत्तर देनेवाले वीर अमरीकियोंकी समाधियें अपनी अवदात परम्पराके प्रति उनकी जागरूक मान्यताके अनुपेक्षणीय प्रमाण स्वरूप संपूर्ण विश्वमें दर्शनीय हैं। कर्तव्य दुन्दुभिने आज पुनः आहूत किया है हमें। किस लिये? शस्त्र ग्रहणके लिये नहीं, यद्यपि आवश्यक हैं शस्त्र भी हमारे लिये युद्धका भी वह आह्वान नहीं है, यद्यपि युद्ध रत रह-चुके हैं हम। किन्तु दे रही है यह निमंत्रण हमें वहन करनेको वह उत्तरदायित्व जो प्रतिवर्ष निस्तन्द्र रूपेण प्रवर्तित संघर्ष द्वारा किये गये हैं— "आशामें उल्लसित होकर और धैर्यका संकटोंमें सम्बल लेकर।"

यह प्रेरणा है उस युद्धमें रत होनेकी जो हमने मानवताके सामान्य शत्रुओं अत्याचार, विपन्नता, रोग एवं स्वयं युद्धके विरुद्ध करना है। क्या हम विश्वके सभी दिशाओंके मानवोंका इन शत्रुओंके विरुद्ध एक ऐसा भव्य मैत्री संगठन प्रस्तुत कर सकते हैं जो मानवताके लिये अपेक्षया अधिक सुखद जीवनका प्रवर्तक हो। क्या आप इस ऐतिहासिक प्रयत्नमें हमारे सहयोगी होंगे? विश्वके सुदीर्घ इतिहासमें स्वतन्त्रताके उपदस्थ होनेकी विकटतम् स्थितिमें कतिपय विरल संततियोंको ही उसका रक्षक होनेका श्रेय प्राप्त हुआ है। मैं इस उत्तरदायित्वसे पराङ्मुख होना नहीं चाहता, प्रस्तुत् मेरे लिये यह स्वागत योग्य है। हममेंसे कोई भी व्यक्ति किसी अन्य राष्ट्र अथवा संततिसे स्थितिकी अपेक्षासे स्थानान्तरण नहीं चाहेगा, ऐसा मेरा विश्वास है। जिस शक्ति, विश्वास एवं निष्ठासे हम अपने यत्नोंको संपुटित कर सकेंगे, उसकी कान्तिसे न केवल हम अथवा हमारा राष्ट्र भासित होगा, प्रस्तुत् उसकी विभामें उन सभीका पुनीत स्थान होगा जो उसकी सेवामें रत होंगे। इतना ही नहीं, इस पावन ज्योति पुंजके आलोकसे सारा विश्व भासित होगा।

अतः मेरे अमरीकी बन्धुओ, मत पूछो कि अमरीका तुम्हारे लिये क्या कर सकता है। इसके स्थान पर पूछो अपने अन्तर्मनसे कि तुम अमरीकाके लिये क्या कर सकते हो।

अपने विश्वके बन्धुओंसे मेरा आग्रह है– मत पूछिये अमरीकासे है कि वह आपके लिये क्या कर सकता है? यदि अपेक्षा है किसी प्रश्नके उत्तर की तो वह प्रश्न है– हम सम्मिलित रूपेण मानवताकी स्वतन्त्रताके लिये क्या कर सकते हैं?

अन्तमें मैं कहूँगा कि आप अमरीकाके अथवा विश्वके नागरिक हों, आप हमसे शक्ति एवं उत्सर्गके उसी उच्च स्तरकी अपेक्षा रखें जिसकी हमें आपसे है। एक निर्भ्रान्त शुभ्र चेतनाको अपना पुरस्कार स्वीकार कर, अपने क्रियाकलापका इतिहासको अंतिम निर्णायक बनाकर, आइये हम उस देशका नेतृत्व करें जिसे हम प्यार करते हैं– उस प्रभुकी सहायता और आशीर्वाद लेते हुये और हृदयमें इस धारणाकी सुदृढ अवस्थिति सहित कि भूतल पर ईश्वरीय कार्योंकी निष्पत्तिके उत्तरदायी हम ही हैं। हां एकान्ततः हम ही।

बंगालकी क्रान्तिकारी विचारधारा पर :

महर्षि दयानन्दका प्रभाव

(लेखक— श्री पं. दीनबन्धुजी शास्त्री, आर्यसमाज, कलकत्ता)

१८७० के प्रयाग कुम्भमें बंगालके श्री देवेन्द्रनाथ ठाकुरने स्वामी दयानंदजीको बंगाल आनेका निमंत्रण दिया था। उस समय बंगालमें जो सामाजिक तथा सुधार तथा धार्मिक आन्दोलन चल रहे थे, उन सबको महर्षि दयानन्दके विचारों में विशेष रुचि थी ! १८७२ के दिसम्बर मासमें स्वामीजी कलकत्ता पहुंचे। कलकत्ताके प्रतिष्ठित व्यक्तियोंने उनका शानदार स्वागत किया।

म. देवेन्द्रनाथ ठाकुरने दोनो पुत्रों, द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर और हेमेन्द्रनाथ ठाकुर को स्वामीजीकी सेवामें अर्पण कर छोडा था। कविवर रवीन्द्रने, जो इस सारे वातावरणको स्मृति रखते थे, महर्षि दयानंदके चरण स्पर्श किये थे। महर्षिको उन्होंने वेद मन्त्र सुनाये थे। महर्षिने उन्हें यशस्वी होनेका आशीर्वाद दिया था। श्री केशवचन्द्र सेनसे स्वामीजीको बहुत स्नेह था, पर खेद भी था कि केशवचन्द्र सेन ईसाइयतकी ओर बहुत झुके हुए थे और संस्कृतज्ञ नहीं थे हां केशवचन्द्र सेनजीको दो बातोंको वस्त्रधारण करना, और हिन्दीमें भाषण देना, स्वामीजीने प्रेमसे मानकर तदनुसार आचरण करना आरम्भ कर दिया था। स्मरण रहे कि राजा राममोहन राय और केशवचन्द्र सेन दोनों सुधारकोंने अपने अपने समयमें अपने-अपने विचारोंको हिन्दीमें प्रकाशित किया था। अपने ' हिन्दी साहित्यके इतिहास ' में पं. रामचन्द्र शुक्लने ४२६ और ४२७ पृष्ठ पर लिखा है कि 'राजा राममोहनने वेदान्त सूत्रोंके भाष्यका हिन्दी अनुवाद प्रकाशित कराया और 'बंगदूत' नामक संवाद-पत्र भी हिन्दीमें निकाला '।

वास्तवमें भारतकी एकता स्थापित करनेमें उत्तर प्रदेशकी शौरसेनि प्राकृत पिछले डेढ दो हजार वर्षसे अखिल भारतीय भाषाका काम करती आई है। हिन्दीका आन्दोलन कोई नया नहीं है, वह चाहे प्राकृत रूपमें हो, या किसी अपभ्रंश में, या हिन्दी उर्दूमें या हिन्दुस्तानी रूपमें, ब्रजभाषा या खडी बोलीके रूपमें। जो कोई भी अखिल भारतीय दृष्टि रखेगा वह इसी बोलीका आश्रय लेगा। ईसाई, मुसलमान, अंग्रेज, सरदार, इतर प्राचीन लोग सब अपनी अपनी बोलीके बाद हिन्दीसे ही परिचय पाना अनिवार्य समझते रहे हैं। यह मध्यदेश भारतका हृदय है और चिरकालसे इसका स्वामी भारतका सम्राट् बनता रहा है। प्रसिद्ध विद्वान्, संस्कृतज्ञ, बंग भाषा गद्यशैली प्रवर्तक, समाज सुधारक, दयालु और सुशील ईश्वरचन्द्र विद्यासागर और स्वामी दयानंद जो परस्पर प्रेमाबद्ध थे परस्पर बडा मान प्रदर्शन करते थे।

दयानंदजीके कहने पर कि आप वैदिक धर्म प्रचार कीजिए, ईश्वरचन्द्रने कहा था, इस शरीरसे तो न होगा अगले जन्ममें देखा जायगा। बंग गद्यके लेखक और पत्रकार अक्षय कुमारदत्तजी स्वामीसे समय समयपर अलाप करते थे। योगी अरविन्द घोषजीके नाना राजनारायण वसु स्वामीजीके बडे भक्त थे और प्रायः उनसे चर्चा करते थे। श्री अरविन्द घोषकी माता अपने पितामहसे स्वामीजीके सम्मानके लिए क्या क्या भाव लाई होगी, उसकी ऊहा कठीन नहीं। श्री अरविन्द, दयानन्द, बंकिमचन्द्र और लोकमान्य तिलकके कार्योंकी भूरि भूरि स्तुति करते थे और प्रत्यक्ष ही स्वयं भी प्रभावित थे। भूदेव मुखोपाध्याय अपने समयके शिक्षाशास्त्री थे और बिहार प्रवर्तनामें हिन्दीकी इन्होंने सहायता की थी। स्वामीजी बहुतसे सुधारकों और विद्वानोंसे मिलकर कलकत्तेके संस्कृत कालेजमें वेद शिक्षा योजना पर विचार करते रहे। राजा राजेंद्रलाल मित्र अपने समयके बडे विद्वान् थे। प्रसिद्ध आई० सी० एस० विद्वान् अनुवादक प्रबन्ध कुशल श्री रमेशचन्द्र दत्त भी स्वामीजीके साथ इति-

हास वेद आदिपर आलोचना करते रहे। डा. महेन्द्रलाल सरकार अपने समयके विज्ञानके अन्वेषक थे। प्रतापचन्द्र मजूमदार ब्रह्म समाजके देश देशांतरोंमें लब्ध प्रतिष्ठित उपदेष्टा थे। ये भी स्वामीजीसे मिलते रहे। कविराज गंगाधर चरकके टीकाकार थे। लालबिहारी देव प्रसिद्ध पादरी और वर्धमानके महाराजा बबविहारी कपूर भी चर्चा करते रहे। हेमचन्द्र चक्रवर्ती तो शिष्य रूपसे साथ रहकर स्वामीजीसे चिरकालतक योग और उपनिषद्का अभ्यास करते रहे!

ताराचरण तर्करत्न और महेशचंद्र विद्यारत्नसे तो स्वामीजीका शास्त्रार्थ ही हुआ। ताराचरणको सबने लज्जित किया। स्वामीजी मुर्शिदाबाद और वर्धमानतक गये। इन दिनों समय निकाल कर स्वामीजी ग्रन्थ रचना भी करते रहे नाना स्थानोंपर उपदेश भी देते थे। इस दीर्घ यात्रामें कलकत्ता और बंगालके मुख्य मुख्य व्यक्ति सम्पर्कमें आये। श्री रामकृष्णजी परमहंससे भी स्वामीजीका अनेकबार साक्षात्कार हुआ। सत्यान्वेषी जानते हैं कि पहले पहले रामकृष्णजी परमहंस दयानंदजीसे प्रभावित थे। यदि कोई पूरी खोज करे तो इन पांच मासके कार्यकी स्वयं एक छोटीसी पुस्तक लिखी जा सकती है।

बंगालके इन विशिष्ट व्यक्तियोंके अपने लेखों, पुस्तकों परस्पर संवादों, तत्कालीन समाचार पत्रों, अंग्रेजीकी गोष्ठियों, गवर्नमेन्टके विवरणों! वाइसरायके सेक्रेटरी आफ स्टेटके प्रति भेजे हुए गुप्त डिस्पैचों तथा पंडितोंके खंडनों आदिमेंसे स्वामी दयानंदजीके इस कार्य कालके विषयमें प्रभूत सामग्री एकत्र की जा सकती है। कांग्रेसके प्रथम अध्यक्ष श्री उमेशचन्द्र बन्धोपाध्यायजी स्वामीजीसे भेंट करते रहे थे। महर्षि देवेन्द्र ठाकुरके साथ स्वामीजीका घना सम्पर्क था।

'स्वामीजीके कहनेसे श्री देवेन्द्रनाथ ठाकुरने बोलपुर विश्वभारती बननेसे पहले शांति निकेतनमें प्रतिदिन होम करनेके लिए एक वेदपाठी श्रोत्रिय नियत कर रखा था।' वास्तविक रूपमें आदि ब्रह्मसमाजके संस्थापक श्री देवेन्द्र ठाकुर तथा उनके परिवार और आर्य समाजके संस्थापक स्वामी दयानन्दजीके विचारोंमें बहुत समानता थी। स्मरण रहे, स्वामी दयानन्दजी वैदिक पाठशाला खोलनेकी प्रेरणा देवेन्द्रजीसे करते रहे और विश्वभारती शांति निकेतनका मूल नाम ब्रह्मचर्य आश्रम था। भारतके विषम कालमें भारतके सुधारकोंके साथ परिचय और विचार करके स्वामी दयानन्दजीने ऐसे ऐसे विशेष व्यक्तियोंको प्रभावित किया, जिन व्यक्तियोंने भारतके अनेक विध आन्दोलनोंमें प्रमुख भाग लिया। भारतकी वर्तमान स्वतंत्रतामें जिन आन्दोलन और कार्यकर्ताओंने भाग लिया, उनपर स्वामीजीका प्रभाव पाठक अच्छी प्रकार अनुभव कर सकते हैं। (आदिब्राह्मसमाजके उपदेशक श्री हेमचन्द्र चक्रवर्तीकी डायरी 'दयानन्द प्रसंग' के आधार पर)।

— प्रेषक डॉ. खुशहालभाई पटेल, भरुच

आध्यात्मिक-चर्चा :

आत्मोन्नतिके सोपान

(लेखक— श्री लालचन्द)

(१)

भगवान्के कार्य देखो

विष्णोः कर्माणि पश्यत, यतो व्रतानि पस्पशे ।
इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ऋ. १।२२।१९

सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान्, सर्वेश्वर, परमेश्वरके ये सब कार्य देखिये। भगवान्की रचना सामने है, सारी सृष्टिमें सुन्दर सुव्यवस्था है, सुनियमित प्रगति है उसे देखिये। अपने शरीरको ही देखिये, कैसी सुन्दर रचना है। भगवान्के कार्योंसे धर्मके नियमोंको जाना जाता है। भगवान् जीवात्माका योग्य मित्र है। भगवान, मानव आत्माका परम सुहृद् है। निरंतर साथ रहनेवाला सखा है।

भगवानने सत् संकल्प किया। सकल जगतीकी क्रमिक रचना हुई। भगवान सत्य है, मानव आत्मा भी सत्य है। भगवान सत् चित् आनन्द है, मनुष्य सत् चित्त है। भगवान्के मेलसे उसे दिव्यानन्द मिलता है। आत्मा सत् चित् है मानवचेतन सत्ता है। मानवके संकल्प भी सत्य होने चाहिये। सत संकल्पमें वही शक्ति है। मनुष्य कभी भी अपना अमरत्व न भूले। अपनेमें आत्मविश्वास धारण करता हुआ और भगवान्की देखरेखमें जीवन व्यतीत करता हुआ मानव आत्मा अमर यज्ञ व्याप्त करता है और दीर्घ आयुभर कार्यक्षम रहता है। मानव कभी भी अपने हृदयमें निरंतर साथ रहनेवाले भगवान्को न भूले।

भगवान् परम दृढ है, परमशक्तिमान् है। भगवान्का उपासक भी दृढ और शक्तिसंपन्न होना ही चाहिये। भगवान् दृढ व्रती है वह सभी चराचरकी पालना कर रहा है सबका पोषण भी वही भगवान् परम उदारतासे कर रहा है। उपकार करना भगवान्का व्रत है। भगवान्का उपासक भी अवश्य उदार और सबका हित और सभीका उपकार करनेवाला होना ही चाहिये। भगवान्की सृष्टिके सभी पदार्थ उपकार कर रहे हैं। भगवान्के अनुकूल जीवनव्यवहार करनेवाले उपासकका भी कर्तव्य है कि वह यथाशक्ति सबका उपकार करता रहे। भगवान्का उपासक उदार होना चाहिये तभी तो वह भगवान्का उपासक रह सकेगा। लोग प्रायः दंभ आडंबर आदिमें मग्न हैं। उन्हें अपनी आत्मवाणी सुननेमें रुचि ही नहीं।

भगवान् सर्वज्ञ है। उसका ज्ञान सत्य है और पूर्ण है। भगवान्के निकटवर्ती मनुष्यको भी ज्ञानमें रुचि होनी चाहिये। जो लोग कहा करते हैं कि भगवान्के भक्तके लिए सत् ज्ञानकी अपेक्षा नहीं, वे भूल करते हैं। मूढ अथवा विक्षिप्त व्यक्ति भगवान्का उपासक नहीं हो सकता। यदि यह कहा गया कि प्रार्थना करने मात्रसे भगवान् मनुष्यकी मूढता और विक्षिप्तता हर लेंगे, वे अनभिज्ञ हैं और अज्ञानी लोगोंके कारण ही यह अनर्थकारी प्रचार किया जा रहा है। सत्यज्ञानकी भगवान्के उपासक होनेके लिए नितान्त आवश्यकता है। प्रार्थना तो एक प्रतिज्ञा है और प्रार्थनाके अनुसार जीवन बनानेके लिए भी पुरुषार्थ और प्रयत्नकी अपेक्षा है। जब कि भगवान्के अनन्त कार्य हो रहे हैं और असीम जगती भरमें उसकी सुव्यवस्था स्पष्ट दीख रही है तो उसका सामीप्य प्राप्त करनेके लिए सुव्यस्थित जीवनचर्या और सुनियमित रहन सहन अत्यंत आवश्यक है। भगवान् उसी व्यक्तिकी सहायता करता है जो उद्यमी है। आलसी, प्रमादी व्यक्ति भगवान्का उपासक नहीं हो सकता, उसे भगवान्के सामीप्यकी अनुभूति होनो संभव ही नहीं। लोग आलस्यको आराम कहते हैं। अनियमित जीवनचर्याको स्वाधीनता कहते हैं और प्रमाद तो मानो मनुष्यका धर्म ही वे समझ रहे हैं। स्मरण रहे कि हम कर्तव्य करते हुए ही पूर्ण आयुभर कार्यक्षम रह सकेंगे।

जो लोग भगवान्के उपासक कहलाते हैं और केवल पूजा अर्चना आराधना करना मात्र पर्याप्त समझते हैं अथवा अग्निकुंडमें आहुति देने मात्रको देवयज्ञ माने हुए हैं, वे नितान्त भूलमें है। यज्ञ पुरुष परमात्मा तो अनन्तकर्मा विश्वकर्मा है

और लोग यह समझते हैं कि स्तुति मात्रसे भगवान् रीझ जाएंगे, यह उनकी भयंकर भूल है। यदि भगवान्का सामीप्य प्राप्त करना, और अपने अत्यंत निकट अपने ही हृदयमें उसे अनुभव करना हमें अभीष्ट है तो हमें भगवान्को ही आदर्श समझना चाहिये और उसीके गुण अपनाने चाहिये, तभी हम भगवान्के अनुकूल जीवनचर्या करते हुए भगवान्के प्यारे भगवान्के उपासक हो सकेंगे। मर्यादाका तोडना स्वतंत्रता नहीं, यह तो बन्धन है। सुनियमित जीवनचर्यामें ही मनुष्य सही प्रगति और सम्यक् उन्नति करता हुआ भगवान्का प्यारा हो जाता है।

भगवान्का ज्ञान सत्य है और पूर्ण है अतः मनुष्यको अवश्य ही सत्यज्ञान प्राप्त करना चाहिये। भगवान् परम उदार है, भगवान् परम दयालु है और साथ ही न्यायकारी है, मनुष्यको भी सत्य, न्याय और दयाका समन्वय अपने जीवनव्यवहारमें करना चाहिये तभी वह भगवान्का उपासक होगा। भगवान् पूर्ण है। मनुष्यको ध्येयको पूर्णता होनी चाहिये। जब कि अपनेमें तथा सभीमें भगवान्की अनुभूतिकी इच्छा है, तो हमें भगवान्के अनुकूल जीवनचर्या किये बिना सफलता कैसे मिलेगी ? कैसे हमारा उद्देश्य पूरा होगा ?

भगवान् सबके हृदयमें शोभायमान है। हम ईर्ष्या, घृणा और द्वेष बढाते हुए भगवान्के निकट कभी भी नहीं हो सकेंगे। भगवान् प्रेममय है इसीलिए वह आनन्दमय भी है। हम सबसे सत्य प्रेमव्यवहार करें प्रसन्न रहें तभी हम भगवान्के उपासक हो सकेंगे। प्रेम और आनन्दका निकटतम संबंध है।

भगवान्के उपासक होनेके इच्छुक व्यक्तिका आदर्श स्वयं भगवान् ही होना चाहिये। वह अवश्य भगवान्के गुण अपनेमें धारण करे। भगवान्की असीम जगतीमें ऋत और सत्य, दोनों सुनियमनका काम कर रहे हैं, भगवान्के उपासकका जीवन सुनियमित और सुव्यवस्थित होना ही चाहिये।

सहृदय परम सुहृद भगवान् प्रेममय है इसीलिए तो वह आनन्दमय है। मनुष्य यदि भगवान्का उपासक होना चाहता है तो उसे सबसे ही सत्य प्रेमका सरल व्यवहार करना चाहिये। भगवान् परम उदार है, इसलिए दरिद्र ओछे संकीर्ण विचारोंवाला व्यक्ति भगवान्का उपासक नहीं होसकता। भगवान्के उपासकको उदार होना ही चाहिये। छलकपट करनेवाले, विश्वासघात करनेवाले, कुटिल स्वभाववाले, अनियमित जीवनचर्या करनेवाले, स्वार्थी क्रूर, कठोर और कलुषित वासनाओंमें रुचि रखनेवाले लोग भगवान्के उपासक नहीं होसकते। उधार लेकर न देनेवाले, विश्वासघात करनेवाले, मित्र द्रोह करनेवाले तथा देशद्रोह करनेवाले लोग भगवान्के उपासक नहीं होसकते। भगवान्के अनुकूल रहना ही भगवान्का उपासक होना है।

सत्य यज्ञ शोभा और ऐश्वर्य

सत्यं यज्ञः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा।

मानवगृह्यसूत्र ११९

मुझमें सत्य, यज्ञ, शोभा और ऐश्वर्य स्थिर रहे, मेरा जीवन भगवान्को समर्पित रहे।

सत्यं शिवं सुन्दरं सच्चिदानन्द भगवान्की सृष्टिमें सौन्दर्य है सुव्यवस्था है। प्रत्यक्ष दीख रहा है कि सारी जगतीमें कोई नियम काम कर रहा है। भगवान्की रचनामें सुनियमता और सुव्यवस्थासे मनुष्य शिक्षा ले। भगवान्के अटल नियम ऋत और सत्य काम किये जा रहे हैं। ऋताचारसे ही मनुष्यमें श्रद्धा उदय होती है। श्रद्धामयी बुद्धिमें सत्यको धारण करनेकी क्षमता होती है। मनुष्य भी सत्यको साक्षात्कार करनेका दृढ संकल्प ले, और एतदर्थ साधना करे तो अवश्य सत्य ज्योतिका प्रकाश होगा और मनुष्यमें सद् भावना, सद् विचार और सत्कर्मकी रुचि उदय होगी। मनुष्यमें सद् भावना रहेगी और उससे सत्कर्म ही होंगे।

सत्य, यज्ञ, शोभा और ऐश्वर्यप्राप्ति यह जीवनके क्रियात्मक रचनात्मक क्रमका दिग्दर्शन है। मनुष्य ऋताचार द्वारा, अपने व्यवहारमें नैतिकता लानेसे सत्यका साक्षात्कार करे। अपने प्रत्येक कर्ममें सत्य धारण करे। छल, कपट, मोह आदि विचारोंको हटाए बिना सत्य नहीं धारण होसकता। मनुष्यके भावों, विचारों संकल्पों तथा कर्मचेष्टामें सत्यन्यायको, नैतिकताको कभी न भूले, सदा अपने सभी व्यवहारोंमें सत्यका परिचय देवे तो अवश्य सत्य स्वरूप भगवान् उसकी रक्षा करते हैं और उसमें सामर्थ्य बढता रहता है। मनुष्य उत्साहित होता और सत्यमें स्थिर रहता है।

सद्भाव, सद्विचार, सद्संकल्प और सत्कर्म इस प्रकार पावनसत्य मानवजीवनमें व्याप्त रहे तभी मनुष्य सदाचारी है। जो सदाचारी है वह अवश्य ज्ञानपूर्वक जीवन व्यवहार कर रहा है। सत्य ब्रह्म है, सत्य धर्म है, सत्य महान् है, सत्य ही परम ज्ञान है। सत्य ही प्रेमको पावन बना रहा है। प्रेममें यदि सत्य न रहे तो वह ममता, मोह, राग हो जाता है उसमें न तो पवित्रता रहती है न स्थिरता रहती है वह पावन न रहकर बंधनका हेतु बन जाएगा। वह प्रेम रहता

ही नहीं वह लगाव सा ही रह जाता है और ऐसे रागमें मनुष्य विक्षिप्त और मूकसा रहता हुआ भ्रष्ट हो जाता है। सत्ययुक्त प्रेम पावन है और सत्य रहित राग तो विकृत कामवासनाका ही रूप है वह प्रेम रहता ही नहीं। सत्य पवित्रतम भाव है जो मनुष्यको सुपथपर चलाता है। सत्यज्योति मनुष्यका जीवनपथ आलोकित रखती है। सत्य अति आवश्यक है। सत्य बिना मनुष्यका विकास संभव ही नहीं। ऋतके आचरणमें, नैतिकताके वातावरणमें ही सत्य दृढ होता है। सत्यके अभावमें मनुष्य पग पग पर ठोकरें खाता है, विषाद और अवसादमें ही डूबा रहता है। सत्यके अभावमें जीवन नीरस और दुःखमय हो जाता है और मनुष्य भयभीत रहता है। सत्य अमर तत्त्व है सत्यमें ही जीवन है। ऋतमें जीवन ज्योतिका विकास है जीवनकी वृद्धि है।

जिस प्रेमके कारण लौकिक व्यवहारमें लोग फंसे हुए दिखावेका बर्ताव कर रहे हैं और मनमें दंभ, धोखा, कपट, छल, द्रोह रखे हुए हैं, वह प्रेम ही नहीं वह तो केवल कामलिप्सा है कलुष वासना है, उससे प्रेम करना मनुष्यके विकारी मनका द्योतक है। प्रायः मनुष्य क्षणिक सुखके लिए अपने जीवनका ह्रास कर रहे हैं और विनाशोन्मुख छिद्रसे वेगसे जा रहे हैं, वह विकृत काम है उसके प्रलोभनमें न आना चाहिये। प्रायः लोग केवल शरीरमय जीवनचर्या कर रहे हैं और अपनी प्राणशक्ति मनःशक्ति तथा चेतनाशक्ति खो रहे हैं उनकी अवस्था दयनीय है।

कामका विशुद्ध रूप सत् संकल्प है। सत् संकल्प आत्मा की प्रेरणा है। सत् संकल्प भगवान् करते हैं और सृष्टिकी रचना आरंभ हो जाती है सृष्टिकी रचनामें कैसी सुन्दरता है कैसा उत्तम नियम है। आत्म प्रेरणासे किये हुए सत् कर्ममें भी सौन्दर्य होता है। ऋत और सत्य ये दोनों अटल नियम काम निरंतर कर रहे हैं, इन्हींके कारण जगतीमें सौन्दर्य है। परमसुंदर भगवान्का सौन्दर्य भगवान्की रचनामें दीख रहा है। मनुष्यके कार्योंमें भी ऋत, नैतिकता और सुनियमता दीखनी चाहिये, यही मनुष्यका सौन्दर्य है। जिस प्रकार कामका विशुद्ध रूप संकल्प है, उसी प्रकार अहंकारका विशुद्ध रूप मनुष्यकी अपनी चेतना शक्ति है और मनुष्यका अपने अमरत्वमें पूर्ण विश्वास है। मनुष्य विकारोंका कभी चिन्तन न करे, विकारोंके चिन्तनसे मन विकारी हो जाता है। मनुष्यको अपने हृदयके तथा मनके विकार दिव्यजनोंकी सहायतासे हटाने चाहिये। अहंकारका विकृत रूप अभिमान है। मनुष्य अपने आत्मसम्मानकी रक्षा करे, अपनी मर्यादा बनाए रखे, अपनी प्रतिष्ठा न जाने दे, पर अपनी योग्यता अथवा नम्रता तकका अभिमान न करे, तो सत्यकी ज्योतिका उसमें सतत प्रकाश रहता है और वह जीवन पथमें निरंतर भगवान्का साथ अनुभव करता है। यही सत्यका साक्षात्कार है।

अभिमान जब मनुष्यमें आ जाता है तो वास्तवमें उसका पतन आरंभ हो जाता है। सत्यका दर्शन परम दर्शन है यह आत्मज्योतिमें भगवान्की परम ज्योतिका प्रकाश है। सत्य अमर है। सत्य आत्मा भी है और परमात्मा भी इन दोनों का मेल योग है। सत्य ज्ञान ही परम ज्ञान है। सत्यका व्यवहार, सद् व्यवहार ही परम शुद्ध व्यवहार है इसमें सत्य, न्याय, दया और प्रेमका समन्वय है। सत्य जब व्यवहारमें आता है तभी सत्य ज्योतित होता है, प्रदीप्त होता है। सत्यका प्रकाश ही अन्तः प्रकाश है। सत्य और प्रेम दोनों ज्योतिर्मय हैं दोनोंके समन्वयमें विचित्र वीर्य है, बल है, तेज है, ओज है, वर्चस है। पुरुषार्थी प्रयत्नशील मनुष्य हीमें सत्य प्रकट होता है। आलसी और प्रमादी मनुष्य तो मनुष्यतासे गिर जाता है, उसमें अभिमान तो होता है पर उसमें मानवताका मान नहीं होता, वह हीन दीन रहता है और उसे भगवान्के निकट रहनेका ध्यानतक नहीं आता।

जिसको आत्मज्योतिमें, अपनी जीवनज्योतिमें, भगवान्की ज्योतिका दिव्य प्रकाश हो रहा है वह धन्य है, उसे भगवानने स्वीकार किया है। वह मनुष्य आत्मवान् है। उसकी जीवनचर्या देखी जाय तो पता लग जाता है कि वह सत्वस्थ है। उसकी जीवनचर्या परम सुखमय है शान्त है, वह पूर्ण सात्विक है। वह रजोगुणी तमोगुणी व्यवहार नहीं करता, अतः वह मोह, शोक, भय और रोगसे बचा रहता है और पूर्णस्वस्थ रहता है। सत्यमें अद्भुत शक्ति है सत्यका अनुष्ठान मनुष्यको अजेय बना देता है।

सत्यको धारण करनेकी तथा सत्यको निर्भय रहते हुए प्रकट करनेकी जिसमें क्षमता है वह मनुष्य दिव्य हो चुका है। वह देवपुरुष है वह अब दिव्यजन है ऐसा मनुष्य ही आर्य है उसमें अर्थ भगवान्के दिव्यगुण विद्यमान हैं, ऐसा मनुष्य अवश्य सुयश दाता है उसकी समाजमें कीर्ति होती है और उसका यश अमर रहता है। ऐसा दिव्यजन सदा ऐश्वर्यवान् रहता है वह दिव्य ऐश्वर्य, अपने सत्यस्वरूप परम चैतन्य रूप परम सुन्दर स्वरूप भगवानसे पाता है और भगवानके साथमें, भगवान् ही की देखरेखमें वह दिव्य ऐश्वर्य भोगता है। वह स्वार्थी नहीं होता उसका ऐश्वर्य सर्वहितमें सर्वमङ्गलमें ही व्यय होता है। सत्य, यश, शोभा और ऐश्वर्य यही विकासका क्रम है। 卐 卐 卐

संस्कार प्रणालीका उदय और विकास

(लेखक— श्री दुर्गाशंकर त्रिवेदी)

✱

संस्कार प्रणालीके उदय होनेके सम्बन्धमें निश्चित रूपसे कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। परन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि इसका जन्म वैदिक कालसे पूर्व ही हो चुका था, क्योंकि ऐसा वेदोंके विशेष कर्मकाण्डीय × मंत्रोंसे स्पष्ट विदित होता है। परन्तु संस्कारोंके संबंधमें विशिष्ट रूपसे कुछ भी स्पष्टीकरण उनमें नहीं मिलता है।

मीमांसकोंने भी इस शब्दका व्यवहार वैयक्तिक शुद्धिके लिए किये जानेवाले अनुष्ठानोंके लिए नहीं किया है। वरन् अग्निके आहुति देनेके पूर्व यज्ञीय सामग्रीको परिष्कृत करनेके उद्देश्यसे इस शब्दका प्रयोग किया है। + वैसे संस्कारोंका उदय कब हुआ यह अनिश्चितसा है, ठीक इसी प्रकारसे इनके उदय और विकास क्रमपर भी पर्याप्त सामग्री जो निश्चित क्रम बता सके कम ही है। सूत्रग्रंथोंके अनुसार संख्याविस्तारों पर कुछ प्रकाश पडता है, जो इस प्रकारसे है—

गृह्यसूत्र— शास्त्रीय दृष्टिसे संस्कार गृह्यसूत्रोंके विषय-क्षेत्रके अन्तर्गत आते हैं। लेकिन यहां भी संस्कार शब्दका प्रयोग उसके वास्तविक स्वरूपमें नहीं मिलता है। यहां भी मीमांसकोंकी तरह ही उसका अर्थ 'पञ्च भू संस्कार' अथवा 'पाक संस्कार' के रूपमें मिलता है। जिससे ये लोग यज्ञीय भूमिके मार्जन, सेचन, शुद्धि आदिका आशय लगाते हैं। विभिन्न गृह्यसूत्रोंमें वर्णित संस्कारोंकी संख्या भी एकसी नहीं है। कहीं कहीं संस्कारोंके नाममें भी कुछ भेद है। कहीं कुछ बढाया गया है, तो कहीं कुछ घटाया भी गया है। ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है। विभिन्न सूत्रकारोंके अनुसार संस्कारोंकी संख्याकी यह सारिणी द्रष्टव्य है—

आश्वलायन गृह्यसूत्र

१ विवाह, २ गर्भाधान, ३ पुंसवन, ४ सीमन्तोन्नयन, ५ जातकर्म, ६ नामकरण, ७ चूडाकर्म, ८ अन्नप्राशन, ९ उपनयन, १० समावर्तन, ११ अन्त्येष्टि।

पारस्कर गृह्यसूत्र

१ विवाह, २ गर्भाधान, ३ पुंसवन, ४ सीमन्तोन्नयन, ५ जातकर्म, ६ नामकरण, ७ निष्क्रमण, ८ अन्नप्राशन, ९ चूडाकर्म, १० उपनयन, ११ केशान्त, १२ समावर्तन, १३ अन्त्येष्टि।

बौधायन गृह्यसूत्र

१ विवाह, २ गर्भाधान, ३ पुंसवन, ४ सीमन्तोन्नयन, ५ जातकर्म, ६ नामकरण, ७ उपनिष्क्रमण, ८ अन्नप्राशन, ९ चूडाकर्म, १० कर्णवेध, ११ उपनयन, १२ समावर्तन, १३ पितृमेध।

वाराह गृह्यसूत्र

१ जातकर्म, २ नामकरण, ३ दन्तोद्गमन, ४ अन्नप्राशन, ५ चूडाकर्म, ६ उपनयन, ७ वेद व्रतानि, ८ गोदान, ९ समावर्तन, १० विवाह, ११ गर्भाधान, १२ पुंसवन, १३ सीमन्तोन्नयन।

वैखानस गृह्यसूत्र

१ ऋतुसंगमन, २ गर्भाधान, ३ सीमन्त, ४ विष्णु बलि, ५ जातकर्म, ६ उत्थान, ७ नामकरण, ८ अन्नप्राशन, ९ प्रवसागमन, १० पिण्डवर्धन, ११ चौलक, १२ उपनयन, १३ पारायण, १४ व्रतबंध विसर्ग, १५ उपाकर्म, १६ उत्सर्जन, १७ समावर्तन, १८ पाणिग्रहण।

यदि वैदिक एवं तदनुगामी वाङ्मय पर दृष्टिपात किया जाए तो गृह्यसूत्रोंके पश्चात् हमें धर्मसूत्रोंमें भी संस्कारोंपर कुछ सामग्री मिलती है। वैसे उनका अधिकांश भाग विधि और प्रथाओंसे ही घिरा हुआ है। फिर भी कई संस्कारोंके नियमोंके प्रकरणमें कुछ सामग्री समुपलब्ध है। गौतम धर्म-सूत्रके अनुसार आठ आत्मगुणोंके साथ ही साथ चालीस संस्कारोंकी सूची है। (**चत्वारिंशत् संस्काराः अष्टौ आत्मगुणाः।**) वह सूची इस प्रकारसे है—

× आत्मशरीरान्यतरनिष्ठो विहितक्रियाजन्योऽतिशय विशेषः संस्कारः। –वीर मित्रोदय संस्कार प्रकाश, भाग १, पृ. सं. १३२।

+ श्रीह्यादेश्च यज्ञाङ्गताप्रदानाय वैदिकमार्गेण प्रोक्षणादिः। –वाचस्पत्यबृहदभिधान, भाग ५, पृष्ठ ५१५८।

१ गर्भाधान, २ पुंसवन, ३ सीमन्तोन्नयन, ४ जातकर्म, ५ नामकरण, ६ अन्न प्राशन, ७ चौल, ८ उपनयन, ९ से १२ चार वेदव्रत, १३ स्नान, १४ सहधर्मचारिणी संयोग, १५से१९ पंच महायज्ञ, २० से २६ अष्टक, पार्वण, श्राद्ध, श्रावणी, आग्रहायणी, चैत्री, आश्वयुजी–इति–सप्त पाक यज्ञ संस्था, २७ से ३३ अग्न्याधेय, अग्निहोत्र, दर्शपौर्णमास्य, चातुर्मास्य, आग्रयणेष्टि, निरूढ-पशुबंध, सौत्रामणि–इति सप्त हविर्यज्ञाः।

३४ से ४०— अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्त, षोडशी, वाजपेय, अतिराम, आप्तोर्याम, इति सप्त–सोमयज्ञ संस्थाः।

इस प्रकार देखने पर यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि संस्कार शब्दका प्रयोग यहां पर धार्मिक यज्ञ कृत्योंके रूपमें किया गया है।

परन्तु परवर्ती स्मृतिकार हारितके ❋ मतानुसार– "यज्ञोंका समावेश देव संस्कारों और मनुष्य जीवनके विभिन्न अवसरों पर किये जानेवाले संस्कारोंका समावेश ब्राह्म–संस्कारोंके अन्तर्गत करना चाहिए। केवल ब्राह्म संस्कारोंको ही यथार्थमें संस्कार मानना चाहिए।"

यज्ञ भी परोक्षरूपसे पूत करनेवाले थे, परन्तु उनके आयोजनका मूल प्रयोजन देवी–देवताओंकी आराधना करना था। जबकि संस्कारोंका प्रधानतम ध्येय संस्कार्य व्यक्तिके व्यक्तित्व तथा देहको संस्कृत करना था। महर्षि मनुने इसीलिए 'संस्कारार्थं शरीरस्य + ' कहा था।

स्मृतियोंमें संस्कारों पर पर्याप्त सामग्री मिलती है। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि स्मृतियोंके रचनाकालमें यज्ञीय धर्म और साथ ही साथ दैव संस्कार पतनकी ओर जा रहे थे। हां, स्मृतियोंमें 'संस्कार' शब्दका प्रयोग अधिकतर केवल उन्हीं धार्मिक कृत्योंके अर्थमें किया गया है। जिसका अनुष्ठान व्यक्तिके व्यक्तित्वके समुचित विकास और व्यक्तित्व निर्माणके लिये किया जाता था। इसीलिए तो मनुने कहा है—

'जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद् द्विज उच्यते'। महर्षि मनुके संस्कार निर्धारणके अनुसार गर्भाधानसे लेकर मृत्यु पर्यन्त निम्नांकित तेरह स्मार्त या यथार्थ संस्कार हैं ×।

१ गर्भाधान, २ पुंसवन, ३ सीमन्तोन्नयन, ४ जातकर्म, ५ नामधेय, ६ निष्क्रमण, ७ अन्नप्राशन, ८ चूडाकर्म, ९ उपनयन या मौञ्जीबंधन, १० केशान्त, ११ समावर्तन, १२ विवाह, १३ श्मशान।

इधर याज्ञवल्क्य स्मृति 'केशान्त' को छोडकर शेष सब उन्हीं संस्कारोंकी गणना करती है। इस संस्कार सूचीसे केशान्तका लोप होनेका कारण यह प्रतीत होता है कि उस समय वैदिक–स्वाध्याय प्रणाली करीब करीब ह्रासकी ओर जा रही थी। समावर्तन संस्कारके साथ उसका सम्मिश्रण होनेसे भी उसे गिनतीमें नहीं लिया गया हो, ऐसा प्रतीत होता है।

गौतम स्मृति ● चालीस संस्कारोंका गणनाकी सूची प्रस्तुत करती है। अंगिराजी ❀ अपनी सूचीमें २५ संस्कारोंका ही उल्लेख करते हैं। व्यास स्मृति १६ संस्कार गिनाती है। जिनके नामोंमें कुछ नवीनता नजर आती है अतः वे यहां उद्धृत किये जाते है—

१ गर्भाधान, २ पुंसवन, ३ सीमन्त, ४ जातकर्म, ५ नामक्रिया, ६ निष्क्रमण, ७ अन्नप्राशन, ८ वपनक्रिया, ९ कर्णवेध, १० व्रतादेश, ११ वेदारम्भ, १२ केशान्त, १३ स्नान, १४ उद्वाह, १५ विवाहाग्नि परिग्रह, १६ त्रेताग्निसंग्रह।

महर्षि जातुकर्ण्य ▴ भी सोलह संस्कारोंकी सूची प्रस्तुत करते हैं।

मध्यकालमें संस्कारोंपर निबन्ध भी पर्याप्त मात्रामें लिखे गये हैं। इनमें भी विषय प्रवेशमें वे गौतम, अंगिरा, व्यास, जातुकर्ण्य आदिकी सूचीका ही उल्लेख किया करते हैं। अधिकांश निबन्धकारोंने यहां भी देवसंस्कारों और विशुद्ध यज्ञका वर्णन छोड दिया है। इस तथ्यकी पुष्टिके लिए वीर मित्रोदय, ✳ स्मृति चन्द्रिका, ★ संस्कारमयूख ÷ आदिको देखा जा सकता है।

❋ "द्विविधः संस्कारो भवति ब्राह्मणो दैवश्च। गर्भाधानादिः स्मार्तो ब्राह्मः।" —हारीत धर्मसूत्र

\+ मनुस्मृति २।६६

× मनुस्मृति २।१६,२६,२९। ३–१–४ आदि।

● गौतम स्मृति ८।२

❀ वीर मित्रोदय संस्कार प्रकाश, भाग १ में उद्धृत।

▴ संस्कारदीपक, भाग २, पृष्ठ १ पर उद्धृत।

✳ वीर मित्रोदय, संस्कार प्रकाश, भाग १, पृष्ठ ३७।

★ आह्निक प्रकरण १।

÷ संस्कारोद्देश, पृष्ठ १०।

इन निबन्धोंमें भी अक्सर गर्भाधानसे आरम्भ कर विवाह पर्यन्त ब्राह्म संस्कार या स्मार्त संस्कारोंका ही वर्णन किया है। इसी प्रकरणमें यह स्पष्टतया प्रतीत होता है कि ये लोग केवल दैहिक संस्कारोंको ही संस्कार मानते थे। इसके साथ ही साथ लोक व्यवहारमें प्रचलित अनेक धार्मिक सांस्कृतिक कृत्य किये जाते रहते थे। परन्तु उन्हें स्वतंत्र संस्कारोंकी प्रतिष्ठा नहीं मिल पाई थी। स्मृतियोंके समान ही निबंधकारोंने भी 'अन्त्येष्टि संस्कार' को नहीं लिखा है। हां, इसका वर्णन अन्य पुस्तकोंमें अवश्यमेव मिलता है।

इसके पश्चात् संस्कार पद्धतियों और प्रयोगपद्धतियोंका क्रम आता है। ये भी देवसंस्कारोंको छोड देते हैं और केवल ब्राह्म संस्कारोंका ही वर्णन करते हैं। इसीका कारण यह भी हो कि वे अंशतः अब अप्रचलित हो गए थे। इसी क्रममें उन के द्वारा प्रचलित पाक यज्ञोंका उल्लेख अन्यत्र किया भी है। हां, अन्त्येष्टि संस्कारका निरूपण सर्वत्र पृथक् रूपसे ही किया गया है। पद्धतियोंमें संस्कारोंकी संख्या भी दससे तेरहतक मानी गई है। जिनमें साधारणतया गर्भाधानसे विवाह पर्यंत संस्कार ही प्रमुख रूपसे गिने गये हैं। इन्हीं पद्धतियोंमें अनेकोंमें दस पद्धतियां ही उद्धृत की गईं हैं और अधि- कांशतः "दशकर्म" पद्धति ही इनका नामकरण भी हुआ है। इस क्रममें श्रीगणपति, नारायण, पृथ्वीधर, भूदेव आदिकी दशकर्म पद्धतियां दृष्टव्य हैं।

इस प्रकार विभिन्न कालोंमें विभिन्न विचारकोंने अपने अपने दृष्टिकोणसे संस्कारोंकी संख्या निर्धारित की और अपने अपने दृष्टिकोणसे ही 'संस्कार' शब्दका शाब्दिक अर्थ भी लगाया। लेकिन आजकल व्यावहारिक दृष्टिकोणसे केवल सोलह संस्कारोंका ही वर्णन किया गया है। वैसे जनतामें तो कुछ ही संस्कारोंका आयोजन किया है, परन्तु आर्यसमाजीय विचारधारावाले सज्जन अभी भी पर्याप्त मात्रामें संस्कारोंकी महत्त्वताका समझकर आयोजन करते हैं।

सोलह संस्कार

आज सर्वाधिक लोकप्रिय संस्कार १६ हैं, जिन्हें षोडश संस्कार कहा जाता है। विभिन्न धर्म ग्रंथोंमें यद्यपि उनकी संख्याओंमें मतभेद है, भिन्नता है, फिर भी षोडश संस्कार आधुनिकतम पद्धतियोंमें संख्याकी दृष्टिसे स्वीकृतसे हैं। अतः इन्हें ही सर्वमान्य समझते हुए इनको विभिन्न दृष्टिसे देखा जाए—

महर्षि दयानन्द सरस्वतीने अपनी 'संस्कार विधि +' तथा पं. भीमसेन शर्माने अपनी 'षोडश संस्कार विधि ×' नामक रचनाओंमें केवल सोलह संस्कारोंको ही समादृत किया है।

इन षोडश संस्कारोंमें अन्त्येष्टिकी भी गणना की गई है, परन्तु महर्षि गौतमने अडतालीस (४८) संस्कारोंकी लम्बी सूचीमें अन्त्येष्टि संस्कारकी गणना ही नहीं की है। स्मृतियों, धर्मसूत्रों, गृहसूत्रों और संस्कार विषयक उत्तरवर्ती ग्रंथोंमें भी यह संस्कार करीब करीब उपेक्षित सा ही रहा है! इस उपेक्षाके कारण पर ध्यान दिया जाए तो मुझे मि. एम्. विलियम्स ● का यह कथन एक बहुत बडे अंशतक सत्यसा प्रतीत होता है। वे कहते हैं- 'इसके मूलमें यह धारणा थी कि अन्त्येष्टि एक अशुभ संस्कार है। और शुभ संस्कारोंके साथ इसका वर्णन नहीं करना चाहिए!'

डा. राजबली पाण्डेय 卐 के अनुसार भी उनकी इस प्रक- रणपर जो सम्मति है, वह विचारणीय है। वे लिखते हैं– 'सम्भवतः यह तथ्य भी इसका कारण था कि मृत्युके साथ ही व्यक्तिकी जीवन कहानीका अन्त हो जाता है और मर- णोत्तर संस्कारोंका व्यक्तित्वके परिष्कार पर कोई प्रत्यक्ष प्रभाव प्रतीत नहीं होता!'

परन्तु इतना अवश्य ही है, कि उपेक्षित रहनेपर भी अन्त्येष्टि कर्म एक संस्कारके रूपमें प्रचलित रहा ही होगा, या मान्य रहा हो। कतिपय गृह्यसूत्र इसका वर्णन भी करते हैं। इसी प्रकार मनु, याज्ञवल्क्य और जातुकर्ण्य संस्का- रोंकी सूचीमें इसकी गणना भी करते हैं। कुछ भी हो महर्षि मनुने ❀ उसे समग्र संस्कारोंमेंसे एक माना है। इसके साथ ही यह भी दृष्टव्य है कि इस संस्कार संबंधी मंत्रोंका संक- लन वैदिक मंत्रोंसे ※ किया गया है।

प्राचीन धारणाएं स्पष्ट सी नहीं हैं। परन्तु निबंधोंमें इस संस्कारको उचित स्थान प्राप्त रहा है। इस दृष्टिसे इसे भी संस्कारोंमें गिनकर हमें 'षोडश संस्कारों' के मूल तात्त्विक रहस्योंका अगले पृष्ठोंमें विवेचन प्रस्तुत करना है। 卐 卐 卐

+ वैदिक यंत्रालय, अजमेरसे प्रकाशित।

× ब्रह्मा प्रेस, इटावासे प्रकाशित।

● एम्. विलियम्स 'हिन्दुइज्म, पृष्ठ ६५ में।

卐 डा. राजबलि पाण्डेय, 'हिन्दू संस्कार' पृ. २६।

❀ निषेकादिश्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितो विधिः। -म. स्मृ. ११।१६

※ ऋग्वेद १०, १४ १६, १८। अथर्ववेद १८।१-४

पुरुष प्रजापति

[डॉ० श्री वासुदेवशरणजी अग्रवाल, हिंदुविश्वविद्यालय, काशी]

[गताङ्कसे आगे] .

यही अपक्षीयते स्थिति है। ये पाँचों अण्ड व्यक्तभावके ही परिणाम हैं। अव्यक्त जब कभी व्यक्तभावको प्राप्त करेगा, उसे पांच भावविकारोंकी क्रमिक स्थिति प्राप्त करनी होगी। शतपथ ब्राह्मणकी यह अत्यन्त रहस्यमयी विद्या है। विषय अत्यन्त गूढ और क्लिष्ट है, किन्तु सृष्टि-व्यापिनी निर्माणप्रक्रियाको समझनेके लिए अत्यन्त महत्व-पूर्ण भी है। अर्वाचीन शतीका मानव विश्वकी पहेलीको वैज्ञानिक दृष्टिसे समझना चाहता है। आधुनिक वैज्ञानिकोंके प्रयत्न विश्वरहस्यमीमांसाको स्पष्ट करनेमें लगे हुए हैं। सृष्टिका मौलिक तत्त्व क्या है। क्यों इसकी प्रवृत्ति होती है? इसके मूलमें कौनसी शक्ति है? उसका स्पन्दन किस कारणसे हुआ और किन नियमोंसे आज वह प्रवृत्त है? शक्तिकी प्राणनक्रिया और स्थूल भौतिक पदार्थोंमें परस्पर क्या संबंध है? गति और स्थितिसंज्ञक द्विविरुद्धभावोंका जन्म क्यों होता है और उनका स्वरूप क्या है? इत्यादि एकसे एक रोचक और महत्वपूर्ण प्रश्न सृष्टि विद्याके संबंध में हमारे सामने आ खड़े होते हैं। उनके समाधानका सच्चा प्रयत्न आजके वैज्ञानिक कर रहे हैं। नित्य नूतन प्रयोगों द्वारा वे विश्वकी मूलभूत शक्तिके स्वरूप और रहस्यको जाननेमें लगे हुए हैं।

वैज्ञानिक तत्त्ववेत्ताओंने इतना अब निश्चयपूर्वक जान पाया है कि स्थूल भौतिक सृष्टि जिसे हम भूतमात्रा, अर्थ-मात्रा या वैदिक परिभाषामें वाक् कहते हैं, अन्ततोगत्वा शक्तिके स्पन्दनका ही परिणाम है। विश्वके सब पदार्थ मूलभूत शक्तिकी रश्मियोंके स्पन्दनसे घनीभूत या व्यवस्थित हुए हैं। यह शक्ति विश्वकी प्राणन क्रिया है। प्रत्येक भूतमें यह विद्यमान है। बुद्धिमान् उसे हरएक भूतमें देखते और पहचानते हैं—

भूतेषु भूतेषु विचिन्त्य धीराः।

आज परमाणुके विश्लेषणने यह सम्भव कर दिया है कि शक्तिके इस रहस्यकी झांकी मानवको प्राप्त हो सकी है। किन्तु भूतमात्रा और प्राणमात्राके सदृश ही तीसरी प्रज्ञान-मात्रा भी है, जो समस्त सृष्टिमें उसी प्रकार व्याप्त है जिस प्रकार भूतमात्रा और प्राणमात्रा। लोष्ठ, पाषाण आदि असंज्ञ, वृक्ष-वनस्पति आदि अंतःसंज्ञ, एवं पशु-मनुष्य आदि ससंज्ञ भूतोंमें सर्वत्र अव्ययात्माका श्वोवशीयस् मन अवश्य ही व्याप्त है।

सबके जन्म, स्थिति और लयके पीछे मूलभूत त्रिकका नियम एक-समान है। अवश्य ही विश्वमें वैचित्र्य और विज्ञानकी अनेक कोटियाँ पाई जाती हैं, जिनका स्पष्ट अंतर कीट-पतंग आदिकी मानवसे तुलना करनेपर समझा जा सकता है। प्रजापतिका जो अमृत और अनिरुक्त स्वरूप है, उसकी भाषाको समझनेकी जो स्थिति हो सकती है, विज्ञान भी शीघ्रतासे उस ओर बढ रहा है और विश्वविज्ञानके तत्त्ववेत्ताओंकी मौलिक चिंतनप्रवृत्तिको देखते हुए कहा जा सकता है कि वह समय दूर नहीं है, जब देश और कालके अतिरिक्त तीसरी सत्ताको भी माननेसे ही विश्वनिर्माणकी व्याख्या ठीक प्रकार करनी सम्भव होगी।

एक समय था जब देशके आयतन पर आधारित ज्यामिति द्वारा भूतोंके निर्माणकी मीमांसा की जाती थी। वैज्ञानिकप्रवर आइन्स्टाइनने इस विचारमें महती क्रांति की और देशके साथ कालको भी सृष्टिनिर्माणके मौलिकतत्त्व-रूपमें सिद्ध किया। गणित और भौतिकविज्ञानकी उपपत्ति द्वारा वह तत्त्व सबके लिए मान्य हुआ। देश और काल सृष्टिके निर्माणका अनिवार्य चौखटा है। इसी साँचेमें पड़-कर भूतसृष्टि ढल रही है। देश और कालको ही नाम और रूप कहा गया है। शतपथके अनुसार नाम और रूप दो बड़े वृक्ष हैं जिनके पारस्परिक विमर्द या संघर्षसे यह सब कुछ हो रहा है। शक्तिकी संज्ञा ही यक्ष है, किन्तु नाम और रूप दोनों अभ्व यक्ष कहे गये हैं। जो होकर भी नहीं है (भूत्वा न भवतीति) उसे अभ्व कहते हैं। नामरूपात्मक सारा विश्व वैदिक दृष्टिसे अभ्व ही है। वैज्ञानिककी दृष्टिमें भी यह सारा विश्व शक्तिके मूल आधार पर तरंगित नाम-रूपके अतिरिक्त कुछ नहीं है, जो देश और कालके टकरा-नेसे अस्तित्वमें आया है, आ रहा है और आता रहेगा।

यह जो मूलभूत शक्ति है उसके संबंधमें वैज्ञानिकको भी अभी बहुत कुछ जानना है। विश्वरश्मियाँ (कास्मिक रेडियेशन) कहांसे आती हैं, उनका स्रोत क्या है? शक्तिका जो समान वितरण इस समय हो रहा है, उसकी उलटी प्रक्रिया भी क्या कभी सम्भव है कि जिसके कारण महासूर्य जैसे ज्वलन्त शक्ति-केन्द्रोंका पुनः निर्माण हो सके? एकबार शक्तिका विलय हो जानेपर इसकी पुनः प्रवृत्तिका क्या कोई हेतु और सम्भावना है? इत्यादि प्रश्न विज्ञानके संप्रश्न हैं, जिनका संकेत मानवका आह्वान उस ओर निश्चित रूपसे कर रहा है, जो विश्वका मूल कारण है और जिसके विषयमें सबसे बड़ा रहस्य यह है कि वह इस विश्वसे बाहर रहता हुआ भी इसकी रचना करके इसीमें समाया हुआ है—

तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्।

वैज्ञानिकोंके सामने सुमेरुके समान दुर्धर्ष सृष्टिका संप्रश्न बना हुआ है। जैसा मनीषिप्रवर मॉरिस मेटरलिङ्कने कहा है 'सत्य तो यह है कि इतना अनुसंधान और बौद्धिक मन्थन हो जानेके बाद भी अभी विश्वमानव उस स्थितिमें नहीं पहुँच पाया है, जहां एक भी परमाणु, एक भी घटक कोष या एक भी मानसका पूरा रहस्य या उसकी प्रक्रियाओंका पूरा भेद हमें मिल पाया हो।' अभीतक चारों ओर रहस्य ही रहस्य भरा हुआ है, किन्तु मानव प्रजापतिका नेदिष्ठ रूप है। उसे तत्त्वकी प्राप्तिके बिना सन्तोष हो नहीं सकता। शक्तिके रहस्य और जीवनके स्रोत एवं मनके स्वरूपको जानकर ही मानवके प्रश्नका समाधान हो सकेगा। कहा जाता है कि विश्व वैज्ञानिक आइन्स्टाइन अपने जीवनके अंतिम क्षणोंमें विश्वकी गूढ पहेलीको समझनेमें अतिव्यस्त थे और उनके दृष्टिपथमें यह सत्य आने लगा था कि देश और कालके अतिरिक्त भी कोई शक्ति है जो सृष्टि-प्रक्रियामें अनिवार्य अङ्गके समान कार्य कर रही है और उसकी सत्ताको भी सम्भवतः गणितकी उपपत्तियों द्वारा व्यक्त करना संभव होगा।

यह भविष्यके प्रश्न हैं जिनके विषयमें अधिक ऊहापोह सम्भव नहीं, किन्तु वैदिकविज्ञानकी जो सामग्री हमारे सामने है, उसका जब बुद्धिगम्य विवेचन हम देखते हैं तो यह ध्रुव निश्चित हो जाता है कि उस किसी सत् चित् आनंद तत्त्वने अपने त्रिवृत् स्वरूप द्वारा इस सर्गका वितान किया है और वह स्वयं इसमें गूढ है, वही अव्यक्तसे व्यक्तभावमें आया है। साथ ही समझनेवालोंको इसका भी आभास स्पष्ट मिलता है कि वैदिक विज्ञान और अर्वाचीन विज्ञान इन दोनोंकी शब्दावली और परिभाषाओंमें चाहे जितना भेद हो, मूलतत्त्वकी व्याख्यामें बहुत कुछ सादृश्य है। ऊपर कही हुई पंचाण्डविद्या उसका एक छोटा-सा उदाहरण है। जन्म, वृद्धि और ह्रासकी भौतिक प्रक्रिया, जो विज्ञान और दर्शनमें समानरूपसे मान्य है, वही पंचाण्डविद्याका विषय है। जिसे अंग्रेजीमें ओवल या आयतवृत्त कहते हैं, वही अण्ड है। एक अविशेष केन्द्रसे तीन विशिष्ट केन्द्रोंका विकास यही सृष्टि है। त्रिकभावका नाम ही विश्व है। 'त्रिवृद् वा इदं सर्वम्' यह वेदकी परिभाषा विज्ञानको भी मान्य है। इसी त्रिवृत्भावकी संज्ञा मन, प्राण, वाक् है, जिसकी बहुत प्रकारकी व्याख्या वैदिकसाहित्यमें पाई जाती है। इस व्याख्याके भिन्न भिन्न स्तर हैं, जैसे इस सृष्टिके विभिन्न क्षेत्र या स्तर हैं।

यह बात भी स्मरण रखनी चाहिए कि विज्ञानके नियमके समान ही मूलभूत वैदिक नियम भी अत्यन्त सरल हैं। अध्यात्म, अधिदैवत और अधिभूतके स्तरोंपर उन नियमोंको समझनेका प्रयत्न ब्राह्मणग्रंथोंमें पाया जाता है। वैदिकविज्ञानका एक कठिन पक्ष भी है, वैदिकविज्ञान एक सूत्र या तन्तु नहीं, पूरा पट है। एक तन्तुको पकड़ते ही पूरे पटको सम्हालनेका साहस यदि बुद्धिमें न हो, तो बुद्धि कातर हो जाती है और दिङ्मूढ स्थितिमें पड़ जाती है। किस दशामें कहाँ गतिकी जाय, यह स्पष्ट दिखाई नहीं पड़ता, किन्तु यह ऐसी कठिनाई नहीं है जिसका परिहार न हो सके।

यह तो सृष्टिकी ही विचित्रता है, उसमें सब कुछ ओतप्रोत है। एक सामान्यातिसामान्य अंकुर समस्त विश्वका प्रतीक बना हुआ है। उसका कृत्स्न ज्ञान कोई प्राप्त करना चाहे, तो उसे एक ओर समस्त विज्ञानको और दूसरी ओर दर्शनके ज्ञानको मथना होगा। ज्ञान और विज्ञानको आत्मसात् करके ही अन्तिमतत्त्वका दर्शन किया जा सकता है। ज्ञान शिरोमूला दृष्टि है और विज्ञान पादमूला दृष्टि है। वटमें बीजका दर्शन और बीजमें वटका दर्शन ये दोनों ही ज्ञानसाधनके प्रकार हैं।

गायत्री

गायत्री एक छन्द है। इसमें तीन चरण होते हैं। इस लिए इसे त्रिपदा गायत्री कहा जाता है। ऋग्वेदमें त्रिपद या तीन चरणका बहुत कुछ अर्थ है। इसमें विश्वके अनेक त्रिकोंका अन्तर्भाव हो जाता है। तीन वेद, तीन लोक, तीन देव, यज्ञकी तीन अग्नियां, तीन गुण ये त्रिपादके ही रूप हैं। इन्हींका प्रत्येक त्रिविक्रम है, जिसका अभिप्राय विष्णु नामक संसारकी महती व्यापक शक्तिका त्रेधा स्पन्दन या गति है। इसीलिए मन्त्रोंमें कहा है—

इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा निदधे पदम्।

विष्णुके तीन चरणोंमें सब भुवनोंका अन्तर्भाव है।

यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्व-

धिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा (ऋ. १।१५४।२)

पृथ्वी, अंतरिक्ष, द्यौः ये तीन लोक ही विश्वभुवन हैं। ये ही समस्त ब्रह्माण्डको मापनेवाले विष्णुके चरण हैं। ये ही तीन विश्वरूप हैं, जिनका वर्णन तीन योजनकी दूरी चलनेसे पूर्ण कहा गया है।

विश्वरूप्यं त्रिषु योजनेषु। (ऋ० १।३६४।९)

सृष्टिके इस मूलभूत चक्रको इसी नामसे कहते हैं। यह तीन स्कन्धोंमें व्यक्त होनेवाला एक छंद है। मानवीय जीवनका भी यही नमूना है। जैसे विश्व वैसे ही जीवन। दोनोंमें प्राणकी त्रेधा स्पंदित गति है। अतएव सारा विश्व ही गायत्री छंद है। स्पंदनके ही कारण इसे महासुपर्ण भी कहा जाता है। सारे विश्वके मूलमें जो छंदित गति है वही गायत्र प्राण है। विश्व रचनामें दो ही तत्व प्रधान हैं— एक देव या प्राण, दूसरा भूत। केवल भूत बिना प्राणके स्पंदन-हीन रहता है। अतएव प्रत्येक भौतिक गायत्रीका जीवन-तत्व उसका प्राण है। इसे गायत्र कहते हैं, जैसे ऋग्वेदमें कहा है— यद् गायत्रे अधिगायत्रमाहितम्। (ऋ० १।१६४।२३) पंचभूतोंसे बना हुआ मानव शरीर नितांत प्राकृत है। यह मर्त्य गायत्री है। मन, प्राण, वायु इसके ही तीन चरण हैं। जैसे मुखसे उच्चरित होनेवाले चौबीस अक्षरोंवाली शब्दमयी गायत्री मर्त्य अर्थात् उसके शब्द उत्पन्न होकर कहीं विलीन हो जाते हैं, वैसे ही यह शरीर है। इसका एक चरण पंचभूतोंसे बना हुआ है, 'पंचभूत-मय' या 'वाङ्मय' है। क्योंकि पंचभूतोंकी एकत्र संज्ञा वाक् है। इसका दूसरा चरण 'पंचप्राणमय' है। किन्तु यह भौतिक प्राण है। इसका तीसरा चरण 'मनोमय' है। पंचकोशात्मक मन या विज्ञान समझना चाहिये। इन तीनोंके मिलनेसे जो संस्थान बनता है, उसे 'अपरा, प्रकृति, प्राकृत, अंड या भौतिक-देह' कहते हैं। बिना अमृत चैतन्य प्राणके इसमें चेष्टा नहीं आती। यही चैतन्य-तत्व गायत्र प्राण है, जिसकी ओर ऊपर संकेत किया गया है। अतएव गायत्र इस एक शब्दमें ही प्राण या त्रिक् शक्तिका समग्र रूप आ जाता है। इसे ही उपनिषदोंमें देवकी शक्ति कहा गया है— देवात्मशक्तिः स्वगुणैर्निगूढः, और भी प्राचीन शब्दोंमें कहना चाहें तो इसे ही 'देवमाया' या 'इन्द्र-माया' कहते हैं। मायाका अर्थ कोई धोखा नहीं, किंतु देवकी सत्तात्मक शक्ति है, जिसके द्वारा विश्वरूपोंका विकास होता है।

इंद्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते। ऋग्वेद

इन्द्र अपनी माया शक्तिसे अनेक रूप धारण करता है। उसके सहस्र अश्व हैं।

तस्य हरयः शता दश।

सूर्य ही इन्द्र है, जिसकी सहस्र किरणें सहस्र अश्व कही जाती हैं। एक-एक रश्मि एक-एक रूप है। सूर्यकी रश्मियोंमें जो अनंत प्राणशक्ति है, वही उसका गायत्ररूप है। जैसे गायत्रीके तीन चरण हैं, वैसे ही सूर्यके भी हैं। विश्वके त्रिकात्मक आधारका सर्वोत्तम रूप देखना चाहें, तो सूर्य

की ओर संकेत कर सकते हैं। इसीलिए ऋषियोंने सूर्यको "त्रयीविद्या" कहा है।

सूर्य क्या है? इस प्रश्नका उत्तर कई प्रकारसे संभव है। स्थूल रूपमें सूर्य आगका गोला है। इसका ताप अलौकिक है। इसमें प्रकाशकी मात्रा भी वैसी ही है। सूर्यरश्मियोंके वर्णनमें एक ओर नील और दूसरी ओर लाल रश्मियोंकी प्रभा है। मध्यमें दोनोंकी संधि है, जिसकी आभा पीली है। स्थूल भौतिकदृष्टिसे ही सूर्यका यह त्रयी रूप सच्चा है। स्थूल सूर्यसे कहीं अधिक शक्तिशाली उसका प्राणात्मक रूप है जो अमृत है।

प्राणः प्रजानां उदयत्येष सूर्यः।

वह सूर्य ब्रह्मतत्व ही है, जिसका भौतिक प्रतीक स्थूल सूर्य है।

ब्रह्म सूर्यसमं ज्योतिः (यजुर्वेद २३।४८)

इसे किसी भी रूपमें देखें और कहें, मूलतत्व एक ही रहता है। जिस प्रकार मूलभूत एक प्राण सृष्टिके लिए प्राण, अपान, व्यान इन तीन रूपोंमें प्रकट होता है, जिस प्रकार चतुष्पाद् ब्रह्म एक पैरसे विश्वातीत, अव्यय और अजन्मा है एवं त्रिपाद् रूपसे त्रिगुणात्मक विश्व है, जिस प्रकार एक अग्नि मेधा-समिन्धनसे यज्ञकी तीन अग्नियां बन जाती है, जिस प्रकार एक प्रणव अर्ध मात्रा और त्रिमात्राके भेदसे चतुर्था कहा जाता है, वैसे ही विश्वमें त्रिकका नियम नाम और रूपोंके अनेक क्षेत्रोंमें और अनेक धरातल पर अभिव्यक्त हुआ है।

व्यष्टि और समष्टि कुछ भी ऐसा नहीं है, जो त्रिक या गायत्रीके अनुशासनमें न हो।

ऋग्वेदमें गायत्रप्राण पर विचार करते हुए एक सुन्दर कल्पना आती है। उसके अनुसार प्रत्येक गायत्र्यप्राण या स्पदनकी तीन समिधाएं हैं। उन्हींकी निजी शक्ति और बाहरी महिमासे जीवनका विकास हो रहा है—

गायत्रस्य समिधस्तिस्र आहु-
स्ततो मह्ना प्ररिरिचे महित्वा। (ऋ० १।१६४।२५)

गायत्र प्राणकी ये तीन समिधाएं कौनसी हैं? बाल, यौवन और जरा ये ही तीन समिधाएं हैं, जिनके जलनेसे जीवनका यज्ञ पूरा हो रहा है। इन्हीं तीन काष्ठ खंडोंका समिन्धन या जलनशील ताप और प्रकाश आयुष्यका क्रम है। प्रकृतिका कैसा विचित्र विधान है, कि एकके बाद दूसरी समिधा अपनी विशेषता लिए हुए स्वयं ही इस यज्ञ में प्रकट हो जाती है। बालकपनका बालभाव और यौवनका यौवनभाव एक दूसरेसे कितने विलक्षण हैं। वही गायत्र प्राण जिसका पहला स्पंदन शिशुरूपमें आता है, क्रमशः कालकी शक्ति पाकर यौवनके उस उल्लास भावको प्रकट कर देता है, जिसका अनुभव मानवके लिए पृथ्वी पर साक्षात् स्वर्गका प्रतीक है और जिसके लिए देवता भी लालायित रहते हैं। यौवनकी रसवत्ता अपरंपार है। वह गायत्र प्राणकी दूसरी समिधाके भीतर अंतर्हित वह रस गंगा है जो स्वर्गके वरदान पृथ्वीपर ले आती है। फिर इसके अनंतर गायत्रीकी तीसरी समिधाका अनुभव होता है, जिसमें प्राण के वेगशाली रस स्थिर होने लगते हैं और उनकी मात्रामें न्यूनता आजाती है, मानो किसी क्रूराक्ष यक्षकी घूरती हुई दृष्टि उस पर पड गई हो। दूसरे शब्दोंमें ये ही त्र्यम्बक देवके तीन नेत्र हैं। इनकी चक्षुशक्तिकी परिधिमें गायत्र प्राणके तीनों भाग समाये हुए हैं। यही गायत्रीकी उपासना या त्र्यम्बक देवका यजन है जिसके लिए कहा है—

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।

जिस गायत्री मंत्रकी आराधना की जाती है, उसके तीन भाग हैं। पहलेमें प्रणव, दूसरेमें तीन व्याहृतियां और तीसरेमें त्रिपदा गायत्रीका मंत्र है—

(१) ओम् (अ उ म्)।

(२) भूर्भुवः स्वः।

(३) तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्॥

(१) प्रणवकी तीन मात्राएं सृष्टिके त्रिककी प्रतीक हैं, जैसा कि वह अव्यक्त विज्ञान या मनोमय क्षेत्रमें विद्यमान रहता है। इस मानसी शक्तिका क्रमशः अवतार प्राणरूपमें होता है, जिसकी प्रतीक तीन व्याहृतियां हैं। स्पंदन ही व्याहरण है। व्याहरणका उलटा समाहरण है। समष्टिके भीतरसे ही व्यष्टिभाव जन्म लेता है। ऐसे ही प्रजापतिकी मानस-समाधि विश्वके लिये व्याहृतियोंके रूपमें प्रकट होती है। भूर्भुवः स्वः, इन तीनके उच्चारणसे क्रमशः भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक बन जाते हैं।

इन्हींकी संज्ञा पृथ्वी, अंतरिक्ष और द्यौ लोक है। प्रजापति-के विज्ञानमें इसीसे त्रिकका दर्शन होता है और इसीसे सृष्टिका प्रादुर्भाव। इन व्याहृतियोंसे विरचित जो प्राणा-त्मक संस्थान है, मेधागति जिसका स्वरूप है, उसका जब भूतके धरातल पर अवतार होता है, तो प्राण और भूतके उस सम्मिलित रूपका वर्णन गायत्रीके तीन चरणोंमें पाया जाता है। इसके प्रथम भागमें सविता या मनकी शक्ति है।

मन एव सविता।

(२) दूसरे भागमें देवके वरणीय भर्ग या प्राणका संकेत है, जो अपनी प्रेरणा या जागरणके लिए निरंतर सविता शक्तिपर निर्भर रहता है। समस्त जीवन प्राणके द्वारा मनरूपी सविता देवका ध्यान ही है। सविताको छोड़कर जीवनका कुछ भी स्वरूप नहीं।

(३) मंत्रके तीसरे चरणमें उसके धरातल पर प्रकट होने वाली उन कर्मशक्तियोंका उल्लेख है, जिन्हें 'धियः' कहा गया है।

कर्माणि धियः।

यह ब्राह्मणग्रन्थोंकी परिभाषा है। इस प्रकार गायत्री मंत्र समग्र जीवनका सारगर्भित सूत्र है। ब्रह्मचर्य कालमें सवितृ या मनस्तत्व, यौवनमें भर्ग या प्राणतत्व और आयु-ष्यके शेष भागमें धियः या ज्ञानाधिष्ठित कर्मतत्वका विशेष महत्व है। वैसे ये तीनों परस्पर ओतप्रोत हैं, एक भी दूसरेके बिना नहीं रह सकता।

गायत्री एक छंद है। छंदका प्रयोजन गान है। गायत्र सामको जो गाता है गायत्री उसकी रक्षा करती है। इसी-लिए ब्राह्मण ग्रंथोंमें यह व्युत्पत्ति पाई जाती है-

तमेतदेव (गायत्रं) साम गायन्नत्रायत।
यद्गायन्नत्रायत तद्गायत्रस्य गायत्रत्वम्॥
(जै. उ. ३।३८।४)

ये जो समस्त लोक हैं, इनमें व्याप्त जो साम गान है उसे ऋषियोंने गायत्र्य कहा है अर्थात् गायत्री लोकत्रयीकी संज्ञा है। इस व्यापक और सूक्ष्म दृष्टिसे विचार करने लगे तो वेदकी अनेक विद्याओंका अंतर्भाव गायत्री विद्यामें हो जाता है। उदाहरणके लिये प्राणविद्या गायत्रीका ही रूप है। प्राणका स्वरूप है समंचन-प्रसारण (प्राणो वै समंचन प्रसारणम्)। गायत्री प्राणात्मक मेधा स्पंदनका रूप है। ब्राह्मण ग्रंथोंमें गायत्री और प्राण इन दोनोंके तादात्म्य सम्बन्धका उल्लेख किया गया है:—

प्राणो गायत्री प्रजननम्। तां. १६।१४।५, १६।१६।७ १६।५।१९, १९।७।७

प्राणो गायत्रं (साम)। तां. ७।१।९,७।३।७

तत्प्राणो वै गायत्रम्। जै. उ. १।३७।७

प्राणो वै गायत्र्यः। कौ. १५।२, १६।३, १७।२

प्राणो वै गायत्री। श. ६।४।२।५, ष. ३।७

प्राणो गायत्री। श. ६।२।१।२४, ६।६।२।७, १०।३।१।१; तां. ७।३।८, १६।३।६

यो वै स प्राण एषा सा गायत्री। ५।१।२१

गायत्री वै प्राणः। श. १।३।५।१५

गायत्रीका एक स्थूल प्रतीक पृथिवीको माना गया है। गायत्री एक शक्ति है। जिसके मूलमें प्राणका स्पन्दन है। यही स्वरूप पृथ्वीका है। मातृतत्वकी संज्ञा पृथ्वी है। (द्यौः पिता, पृथिवी माता) इसी स्पन्दनके कारण पृथ्वीकी कुक्षिमें वीर्य अंकुरित होता है और उसके सदृश अनन्त उत्पादन शक्ति पृथिवी मातृत्व है, जो अनादि कालसे है। हमारे इस भूगोलकी सीमित पृथिवी जैसे इस विश्वकी माता है, वैसे ही अनन्त ब्रह्माण्डकी जो माता है वह महा-पृथ्वी भी गायत्रीका ही रूप है। क्योंकि गायत्री सूर्यकी शक्ति है और सूर्य साक्षात् ब्रह्मका प्रतीक है।

सूर्यो ब्रह्मसमं ज्योतिः।
सूर्य द्युलोकका इन्द्र है।
द्यौरिन्द्रेण गर्भिणी।

उसकी शक्ति गायत्री पृथिवी रूपिणी है। पृथ्वीका तात्पर्य स्थूल भूतसे नहीं, किन्तु प्राणसम्पन्न भूतसे है। प्राणसे अनुप्रविश्य महाकाश ही सत्य और सकल लोक है। इन उदात्त अर्थोंकी ओर लक्ष्य करके ही आचार्योंने गायत्री विद्याकी व्यापक व्याख्या करते हुए लिखा।

इयं पृथिवी वै गायत्री।

शतपथमें एक जगह स्पष्ट कहा है कि निदान- विद्याके आधार पर ही पृथिवीको गायत्री कहा जाता है—

गायत्री वा एषा निदानेन। श. १।७।१।१६

विज्ञान-विद्याकी दूसरी दृष्टिसे अग्निको भी गायत्री कहा गया है। यहां अग्निसे तात्पर्य प्राणाग्निसे है—

योवा अत्राग्निर्गायत्री स निदानेन।

श. ११८।२।१५

गायत्री-युक्त प्राणछन्दकी दृष्टिसे गायत्री और अग्निका तादात्म्य है। बृंहण-तत्वकी संज्ञा ब्रह्म, ब्रह्मा या ब्राह्मण है। अतएव ब्राह्मण गायत्री है। ब्राह्मण ब्रह्म या मनस्तत्व है और इसीमें जीवनके छन्दका निवास है।

ब्रह्म हि गायत्री। तां ११।११।९

ब्रह्म उ गायत्री। जै. उ. १।१।८

ब्रह्म वै गायत्री। ऐ. ४।११, कौ. ३।५

ब्रह्म गायत्री। श. १।३।५।८

गायत्री एक प्रकारका तेज है जो प्रकाश और ऊष्माके रूपमें विश्वका मूल है। सूर्य गायत्री तेजका सबसे बड़ा भंडार है और विश्वके निर्माणमें सबसे बड़ा कारण है—

तेजसा वै गायत्री प्रथमं त्रिरात्रं दाधार

पदैर्द्वितीयमक्षरैस्तृतीयम्। तां १०।५।३

तेजो वै गायत्री। गो. उ. ५।३

ज्योतिर्वै गायत्री छन्दसाम्। तां. १३।७।२

ज्योतिर्वै गायत्री। कौ. १७।६

गायत्रीके चारों तरफ उजाला है या विश्वका तेज है। जहां-जहां वैद्युतीका तेज है, वहां-वहां गायत्रीका खेल है। लोकके स्पन्दनके अतिरिक्त शक्ति और कुछ नहीं है और वह प्रातः, मध्याह्न और सायंकालके तीन परस्पर भिन्न और सहयुक्तरूपोंमें देखी जाती है—

दविद्युतती वै गायत्री। तां. १२।१।२

गायत्री ही सविता देवका वरणीय भर्ग है, जिसके रहस्यमय स्वरूपसे प्राणी मात्रको चैतन्यात्मक प्रेरणा मिल रही है। जबतक यह मार्ग है तभीतक यह द्यु है।

गायत्र्येव भर्गः। गो. पू. ५।१५

गायत्रीको 'अयातयामा' कहा गया है अर्थात् वह छन्द जिसका रस कालसे मुक्त नहीं हुआ, जिस केन्द्रका रस काल पी लेता है, जिसे प्राणकी चेतना छोड देती है। प्राणकी सत्ता ही तो गायत्रीका सबल रूप है—

यातयामान्यन्यानि छन्दांस्ययातयामा गायत्री।

तां. १३।१०।१

मस्तक सब प्राणात्मक देवताओंका केन्द्र है। अतएव वही गायत्री छन्द है। शिरके बिना शेष सब प्राणशून्य है।

गायत्रं हि शिरः। श. ८।६।२।९

शिरो गायत्र्यः। श. ८।६।२।३

इसी परिभाषाका अनुसरण करते हुए गायत्रीको मुख भी कहा है। इन्द्र और अग्नि इन दो देवताओंका जन्म मस्तके मुखसे हुआ है। ये ही दोनों मानों मुखके दो जबडे हैं—

नानाहनु विश्रुते।

जो श्रेष्ठ प्राण है उसीकी दृष्टिसे इसे मुख कहा गया है। प्रत्येक प्राण शरीर अन्न-ग्रहणकी दृष्टिसे एक बडा मुख ही है। किन्तु प्राणात्मक होनेके कारण आदानके साथ विसर्ग भी शरीरका धर्म है। प्रजापतिने या दो अश्वियोंने जिस सुनहले डंडेसे (हिरण्यवेतस्) बनते शरीरका संगठन किया है। उसके एक छोर पर इन्द्र और दूसरे छोर पर अग्निकी शक्ति है। अश्विनीकुमारोंने डंडेपर कमलोंकी माला पहनायी है। (आदत्तां पुष्करस्रजम्)। वही तो मेरुदण्डमें आठ पद्मोंका क्रमिक विकास है। प्रत्येक शरीरमें यही श्रीवृक्ष है, जिसे पुष्करस्रज भी कहा जाता है—

मुखं गायत्री। कौ. ११।२

मुखमेव गायत्री। तां. ७।३।७

जैसा पहले कहा जा चुका है कि गायत्री त्रिपदी छन्द है। उसकी तीन समिधाएं हैं। उसका त्रिविध स्तोम है। उसके तीन अक्षर देवता हैं। वह जीवनके त्रिवृत्त यज्ञका साक्षात् रूप है—

त्रिपदा गायत्री। तां १०।५।७

विश्व और जीवनके त्रेधा विभागमें गायत्री, त्रिष्टुप् और जगती ये तीन छन्द तीन अवस्थाओंके तीन दिशाओंके प्रतीक हैं। यद्यपि ये दूसरे तीनोंमें ओतप्रोत हैं। गायत्री बाल्य अवस्था, प्राचीन दिशा और वसुओंका प्रतीक है। त्रिष्टुप् दक्षिण दिशा, रुद्र और यौवनका प्रतीक है। जगती प्रतीची दिशा, आदित्य देवता और जीवनके तीसरे सवनका प्रतीक है। गायत्री वसुओंकी पालनकर्त्री माता है—

गायत्री वसूनां पत्नी। गो. उ. ३।९

गायत्रीको रथन्तर और सूर्यको बृहत् साम कहते हैं। पृथिवी या पार्थिव शरीर एक रथ है, इसका जो साम या छन्द है, उसकी संज्ञा रथन्तर है। क्योंकि वह रथकी सीमाओंको पार करता हुआ सूर्यके बृहत् सामसे अपना सम्बन्ध स्थापित किये रहता है। यही मर्त्य पृथिवीका सम्बन्ध निरन्तर अमृत सूर्यके साथ निरन्तर संयोग है—

गायत्री वै रथन्तरस्य योनिः। तां. १५।१०।५

ऋषियोंने व्यष्टि और समष्टिके धरातलपर प्रकृत्तियज्ञको ही गायत्री या गायत्र कहा है—

गायत्रो यज्ञः। गो. पू. ४। २४

प्रत्येक यज्ञ तीन अग्नियोंसे सम्पन्न होनेके कारण त्रिपदा गायत्रीके समान 'त्रिभृत्' होता है। बिना तीन अग्नियोंके यज्ञ संभव नहीं। ऐसे ही बिना मन्त्र और वाक्यके गायत्रीकी सत्ता संभव नहीं।

गायत्री-विद्याका दृष्टान्त लोकविद्या है अर्थात् तीनलोक गायत्रीके तीन चरण हैं। स्वयं शरीरमें शिरोभाग, मध्य भाग और अधोभागमें लोक हैं। अतएव पृथ्वी-अन्तरिक्ष-द्यौः इन तीनोंका निर्माण गायत्रीकी शक्तिके त्रिधा विभाग से हुआ है।

इस प्रकार निदान-विद्याके आधार पर मूलभूत गायत्री विद्याका संबोध और उसकी व्याख्या अन्य अनेक व्याख्याओंके साथ मिल जाती है। यही वेदार्थकी बहुमुखी क्षमता है। जो गायत्रीमंत्र ध्यान और जपके लिए प्रचलित है, उसके मुख्य अर्थ तीन ही तत्त्व हैं- एक सविता नामक देव तत्त्व, जो समस्त विश्व शक्तियोंका प्रेरक है, दूसरे उसकी प्राणशक्ति, जिसका आवाहन या ध्यान किया जाता है, तीसरे उसकी सम्भावितसे व्यक्तिके निजी विचार और कर्मोंका प्रवर्तन॥

ॐ

वेदोंके अनुवादका प्रकाशन कार्य

भारतवर्षकी शीघ्र उन्नतिके लिये अत्यंत आवश्यक है।

अतः आप इस कार्यको अतिशीघ्र करनेके लिये आर्थिक सहाय जितना दिया जा सकता है, स्वयं दीजिये और दूसरोंसे दिलवाइये।

वेद मानव धर्मका आदिमूल है। मानव मात्रके सच्चे अभ्युदय और निश्रेयसकी सिद्धि वैदिक धर्मकी सच्ची जागृति करनेसे ही हो सकती है। जिस समय वेदका धर्म इस भूमंडल पर जागृत था और ऋषि-महर्षि उसका प्रचार इस भूमंडल पर कर रहे थे, उस समय मानव समाज अत्यंत उच्च स्थान पर था। वह अवस्था पुनः लानेके लिये वेद धर्मका प्रचार करना चाहिये। वेदका अत्यंत सुबोध और सरल भाष्य बनाया है, केवल हिंदी जाननेवाला इसको पढ कर समझ सकता है। इसके ३० भाग छापनेके लिये तैयार हैं—

१ ब्रह्मविद्या, २ मातृभूमि और राज्यशासन, ३ गृहस्थाश्रम, ४ आरोग्य और दीर्घायुष्य, ५ मेधाजनन, संगठन और विजय, ६-१० अग्निदेवता (ज्ञानप्रचार); ११-१९ इन्द्रदेवता (संरक्षण, शत्रुदमन; युद्धनीति और विजयप्राप्ति, आदि); २० मरुत् देवता (सैन्य व्यवस्था), २१ उषा देवता (स्त्रियोंकी उन्नति), २२ अश्विनौ देवता, (औषधिचिकित्सा, रोगनाश), २३ विश्वेदेवाः, २४ वेदका आयुर्वेद २६ सोम, २७ रुद्र, २८ आदित्य, २९ अनेक देवता, ३० ऋषी।

इन तीस भागोंमें चारों वेदोंके सब मंत्र आगये हैं। एकभी मंत्र छूटा नहीं है और उनका स्पष्टीकरणके साथ सुबोधभाष्य लिखकर तैयार किया है। केवल छापना ही बाकी है। मूल्य और व्यय- प्रत्येक भाग ४००से५०० पृष्ठोंका होगा। २००० प्रतियां छापी जायगी। इसका छपाईका व्यय प्रत्येक भागका १००००) दस हजार रु. तक होगा। अर्थात् ३० भागोंका मुद्रणव्यय तीन लाख रु. होगा। हाथमें १००००) रु. आते ही छपाई प्रारंभ होगी। जितनी जल्दी आर्थिक सहायता मिलेगी, उतनी जल्दी हम छाप सकेंगे। एकदम आवश्यक सहायता मिली, तो हम २।३ वर्षोंमें तीसों भाग छाप सकेंगे। इसकी व्यवस्था की है।

इसलिये शीघ्र आर्थिक सहायता जितनी दे सकते हैं उतनी स्वयं दीजिये और जिनको प्रेरणा दे सकते है उनको सहायता देनेकी प्रेरणा कीजिये।

सहायता देनेके नियम—

१ जो सज्जन १००००) दस हजार रु. दानमें देंगे उनके दानसे एक भाग छपेगा और उस भागके मुखपृष्ठपर ऐसा लिखा जायगा कि "इनकी १००००) की सहायतासे यह भाग छपा है।" द्वितीय बार छपनेपर भी उनका उसपर नाम छप जायगा। और पूर्व छपी तथा पश्चात् छपी सब पुस्तकें (प्रत्येककी एक प्रति) और मासिक उनको बिना मूल्य मिलेगी।

२ जो सज्जन ५०००) दानमें देंगे, उनके दानका उल्लेख भूमिकामें किया जायगा। इनको भी सब पुस्तकें पूर्व समयमें छपी और आगे छपेगी प्रत्येक एक एक प्रति और मासिक ये सब मिलेगी।

३ जो सज्जन १०००) दानमें देंगे उनका नाम मासिकमें छापा जायगा और उनको भी सब पुस्तक तथा मासिक पत्र मिलेंगे।

४ जो सज्जन ५००) देंगे उनको पहिले छपी तथा पश्चात् छपनेवाली सब पुस्तकें तथा मासिक पत्र मिलेंगे।

५ जो सज्जन २४० रु. देंगे उनको छपनेपर ३० पुस्तकें मिलेंगी।

६ जो सज्जन १००) देंगे उनको मासिक पत्र मिलता रहेगा।

७ जो सज्जन १) रु. से ९९) रु. तक दान देंगे उनका नाम मासिक दान सूचीमें छपेगा।

प्रत्येक दानका प्राप्तिपत्र 'स्वाध्यायमण्डल, पारडी जि. सूरत (गुजरात)' इस संस्थासे प्राप्त होगा।

जो सज्जन दान देनेके इच्छुक हैं वे अपना दान किसी बैंकका चेक, ड्राफ्ट, मनीआर्डर आदिसे भेज दें।

आवश्यक— यह वेदमुद्रण शीघ्र होना अत्यावश्यक है, अतः दानकी रकम अतिशीघ्र नीचे पतेपर भेजनेकी कृपा कीजिये।

ईसाइयोंने अपने पवित्र बायबलको १२५० भाषाओंमें छाप कर प्रकाशित किया है और इसको लेकर वे भारतमें प्रचार कर रहे हैं। मुसलमानोंने अपने पवित्र कुरानका अनुवाद ७ भाषाओंमें करके वे प्रचार कर रहे हैं।

हम 'हिंदी-गुजराती-मराठी' इन तीन भाषाओंमें अपने 'परम पवित्र वेद' का अनुवाद करनेका यत्न कर रहे हैं। इन तीनों भाषाओंमें प्रकाशन भी शुरू किये है।

१ हिंदीमें— ५ भाग अथर्ववेदके प्रकाशित हुए मूल्य ५०) रु. है

२ गुजरातीमें— ३ भाग अथर्ववेदके प्रकाशित ३०) रु. है

३ मराठीमें— ३ भाग अथर्ववेदके प्रकाशित ३०) रु. है

आगे छपाई चल रही है। आपसे प्रार्थना है कि आप शीघ्र सहायता कीजिये और दूसरोंसे सहायता करवाईये।

प्रत्येक भाषाके ३० भागोंका मुद्रणव्यय तीन लाख रु. है। अर्थात् तीन भाषाओंके प्रकाशनका व्यय नऊ लाख रु. होगा। सहायता देनेवाले अपनी सहायता किस भाषाके प्रकाशनके लिये है यह स्पष्टतासे लिखें।

आर्थिक सहायता शीघ्र भेजिये।

साथ हिंदी पुस्तक सूची है। इन पुस्तककोंको आप खरीद कर मदद कर सकते हैं।

वेदोंकी संहिताएं

	मूल्य
१ ऋग्वेद संहिता	१०)
२ यजुर्वेद	२)
३ सामवेद	२)
४ अथर्ववेद	६)
५ यजुर्वेद काण्व संहिता	५)
६ यजुर्वेद तैत्तिरीय संहिता	१०)
७ यजुर्वेद मैत्रायणी संहिता	१०)
८ यजुर्वेद काठक संहिता	१०)

अथर्ववेदका सुबोध भाष्य

१ से २० काण्ड पूर्ण	५०)

दैवत-संहिता

१ दैवत संहिता— प्रथम भाग— अग्नि-इन्द्र-सोम-मरुद्देवताओंके मंत्रसंग्रह।	१६)
२ दैवत संहिता— द्वितीय भाग— अश्विनौ-आयुर्वेद प्रकरण-रुद्र-उषा-अदिति-विश्वेदेवा देवताओंके मंत्र संग्रह	१२)
३ दैवत संहिता— तृतीय भाग	६)
४ उषा देवता	४)
५ अश्विनौ देवताका मन्त्र-संग्रह	४)
६ मरुद्देवताका मन्त्र-संग्रह	५)

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

१ से १८ ऋषियोंका दर्शन (एक जिल्दमें)	१६)
१ वसिष्ठ	७)
२ भरद्वाज	७)

यजुर्वेदका सुबोध भाष्य

अध्याय	१— श्रेष्ठतम कर्मका आदेश	१.५०
अध्याय	३०— मनुष्योंकी सच्ची उन्नतिका सच्चा साधन	२)
अध्याय	३२— एक ईश्वरकी उपासना	१.५०
अध्याय	३६— सच्ची शांतिका सच्चा उपाय	१.५०
अध्याय	४०— आत्मज्ञान-ईशोपनिषद्	२)

उपनिषद् भाष्य

१ ईश उपनिषद्	२)
२ केन उपनिषद्	१.७५
३ कठ उपनिषद्	१.५०
४ प्रश्न उपनिषद्	१.५०
५ मुण्डक उपनिषद्	१.५०
६ माण्डूक्य उपनिषद्	.५०
७ ऐतरेय उपनिषद्	.७५
८ तैत्तिरीय उपनिषद्	१.५०

गो-ज्ञान-कोश

गो-ज्ञान-कोश (प्रथम भाग)	६)
गो-ज्ञान-कोश (द्वितीय भाग)	६)

विस्तृत सूचीपत्र मंगवाइये।

मंत्री— स्वाध्याय-मंडल

पारडी (जि. सूरत) [गुजरात]

वैदिक ऋचाओंकी ओजस्विता

(लेखक— श्री पं. वेदव्रत शर्मा, शास्त्री)

[गताङ्कसे आगे]

चतुर्थ मुक्तिका
रामराज्यकी रूपरेखा

स्वराज्य और सुराज्यमें यद्यपि तात्त्विक भेद नहीं, तथापि सम्प्रति जनताकी दृष्टिमें दोनों शब्दोंमें मौलिक भेद है। स्वराज्य शब्दमें सबको अनुत्तम मानकर ही राज्यके प्रथम सु शब्दका प्रयोग कर सकते हैं। परन्तु हम स्वको अनुत्तम माननेमें उत्साही नहीं हैं, क्योंकि यदि स्व अनुत्तम है तो उसे राज्यको संभालनेकी क्षमता प्राप्त करनी चाहिए। अन्यथा राज्यकी जगह गुलामी सिर पर आरूढ हो जायगी। मेरे विचारसे उत्तम स्वने स्वतंत्रताके युद्धमें नैतिकता और बलिदानके द्वारा सफलता प्राप्त की, परन्तु आजादी पाकर स्व राज्यमदकी मादकतामें अपनेको भूल गया। क्योंकि स्व नैतिकता और बलिदानको छोडकर मातृ-भूमिका सेवक न रहकर भोक्ता बन गया। अब स्वको सुमें लाकर स्वराज्यको सुराज्यमें बदलना है।

बीजके अनुरूप ही वृक्ष और वृक्षके अनुरूप ही फल होते हैं। दार्शनिक भाषामें इस वाक्यको इस प्रकार भी कह सकते हैं कि कारणके अनुरूप ही कार्यमें गुण आते हैं। जिस आटेमें धूल मिली हो, उसकी रोटी भी बेस्वाद होगी। अच्छे फलके लिए अच्छे बीजकी आवश्यकता पडती है। गत-पृष्ठोंमें अच्छे बीजोंका निरूपण किया जा चुका है, अब अच्छे फलका वर्णन करेंगे। फल और बीजका यद्यपि घनिष्ठ सम्बन्ध है तथापि बीजको वृक्षके आकारमें आकर ही फलका उत्पादक बनना पडता है।

अतः राम-राज्यकी स्थापना स्वको सुमें लाकर ही की जा सकती है। स्वको सुमें बदलनेके लिये इस श्लोकपर भी ध्यान देना होगा—

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम् ।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥

" स्वको उदार-चरित होना पडेगा, तभी वह सुमें बदल सकता है। अन्यथा रामराज्य भी आकाश-पुष्पकी भांति मानव-मनको ललचाता रहेगा। दलबन्दीके दलदलमें पडा हुआ राष्ट्र-नायक उदार-भावनाओंका स्वप्न भी नहीं देख सकता। उसे तो दलको परिशुद्ध करनेके निमित्त रुद्रका नग्न-ताण्डव भी करना पडेगा, नहीं तो दलके दलदलमें फंस कर जनता-जनार्दनके हृदय-सिंहासनसे च्युत होकर इतिहासके आकाशमें तारोंकी भांति टिमटिमाना पडेगा।

राम-राज्यका स्वरूप

भारत धर्म-प्रधान देश है। अतः यहांका समाज भी धर्म-प्रधान था। भारतमें एक अपूर्व मौलिकता है, वह यह कि धर्म-प्रधान-समाज अपने धर्मपर सदा अचल रहा। इसने कभी भी राजाके धर्मका अनुकरण नहीं किया। इसी लिये हम गर्वसे अब भी गाते हैं कि—

यूनान-मिश्र-रोमा सब मिट गये जहांसे ।
अबतक मगर है बाकी नामो-निशां हमारा ॥

प्रजाका धर्म राम-राज्यमें वर्णाश्रम व्यवस्था ही थी। परन्तु अन्य देशोंमें राजाका धर्म ही प्रजाका धर्म होता आया है। उदाहरणार्थ, योरोपमें कान्सटेन्टाइन बादशाहने ईसाई धर्म स्वीकार किया तो प्रजाने भी उसे ग्रहण किया। स्पेनमें मूर लोग आये तो स्पेनके निवासी मुसलमान हुए और मूर लोगोंको भगाकर जब फर्डीनेन्ड (Ferdinant) और आईसबेल (Isabell) सत्ताधीश बने तो, तुरन्त ही स्पेन में ईसाई धर्मकी पुनः स्थापना हो गई। उसी प्रकार मध्य-एशिया और अफ्रीकामें लोग सौ वर्षके अन्दर मुसलमान हो गये। उन्हीं मुसलमानोंका साम्राज्य हमारे भारतवर्षमें लगभग पांच सौ वर्षतक चलता रहा। लेकिन अधिकांश भाग की प्रजापर उनका कुछ भी प्रभाव न पड सका। जिस ईसाई धर्मके प्रचण्ड झंझावातके सामने समस्त योरोप खण्डको झुकना पडा, उसका प्रयत्न भारतपर क्यों निष्फल हो गया?

जिस बौद्ध-धर्मने अपनी पताका चीन और जापानमें फहराई, उसी बौद्ध-धर्मको अपने ही जन्मस्थानसे क्यों भागना पडा ? इसका कारण केवल इतना ही है कि, जब मनुष्यकी शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक आवश्यकताओंकी योग्य व्यवस्था हो जाती है, तो दूसरी बातोंका अधिक महत्त्व नहीं रह जाता। इसी विशिष्टिताका नाम है, वर्णाश्रम-व्यवस्था, जो रामराज्यमें थी। अब आइए राम-राज्यको आदिकवि महर्षि वाल्मीकि की दृष्टिसे देखें।

कोसलो नाम मुदितः स्फीतो जनपदो महान्।
निविष्टः सरयू-तीरे प्रभूत धनधान्यवान्॥

वा. रा. ५।५

" अयोध्या कोशल राज्यकी राजधानी थी। यहाँकी प्रजा प्रसन्न-चित्त थी। राज्य विस्तृत और स्फीत अर्थात् धवल था। यहांके लोग प्रभूत धन-धान्यवान् थे। " इस पदसे राम-राज्यकी प्रथम विशेषता पर ध्यान आकर्षित किया गया कि राज्यकी प्रजा प्रमुदित होनी चाहिए। कालिदासके शब्दोंमें " राजा-प्रकृति रञ्जनात् " ही होता है। दूसरी राम-राज्यकी विशेषता स्फीत शब्द द्वारा प्रकट की गई है। नगर स्वच्छ थे, प्रजाके गृह धवलित थे। तीसरी विशेषता यह थी कि यह राज्य पुष्कल धन-राशिसे सुशोभित था। तभी तो रघु स्वयं प्रजाको धनसे सींचकर रिक्त-हस्त होनेपर भी चौदह करोड अशर्फी गुरु-दक्षिणाके लिये ब्राह्मण-छात्र कौत्सको दे सके।

तस्मिन् पुरवरे हृष्टा धर्मात्मानो बहुश्रुताः।
नरास्तुष्टाः धनैः स्वैः स्वैरलुब्धाः सत्यवादिनः॥

वा. रा. ६।६

यह पद्य हमारी आखें खोल कर, हमें एक अनुपम लोकमें बैठा देता है। उस समय शिक्षाकी स्थिति आजसे भी कई गुणी अच्छी थी, लोग बहुश्रुत थे। उनके ज्ञान और आचरणमें अन्तर नहीं था। करनीके पश्चात् कथनी करते थे। लोग प्रसन्नचित्त थे। लोग धार्मिक थे अर्थात् उद्योगी और कर्तव्य-निष्ठ थे। अपने अपने पुष्कल धनसे सन्तुष्ट थे, अतः लोग अलुब्ध और सत्य-निष्ठ थे। तात्पर्य यह है कि यदि हम बापूके राम-राज्यका स्वप्न पूरा करके अपनेको उनका सच्चा अनुयायी सिद्ध करना चाहते हैं, तो राष्ट्रके नागरिकोंको पूर्ण-शिक्षित और आचार-निष्ठ बनाना पडेगा। आर्थिक संघर्षको आत्म-निष्ठाके द्वारा ही शान्त करना पडेगा।

नाल्पसंनिचयः कश्चिदासीत् तस्मिन् पुरोत्तमे।
कुटुम्बी यो ह्यसिद्धार्थो गवाश्वधनधान्यवान्॥

वा. रा. ६।७

" रामराज्यमें कोई अल्प धनवाला नहीं था। कुटुम्ब धन-शाली थे। गायों, घोडों और उत्तम पशुओंसे कुटुम्ब अलंकृत थे। " इस आदर्शके द्वारा ग्रामोंको समुन्नत बनाना चाहिए। ग्रामवालोंमें ही कुटुम्बकी प्रथा शेष रह गई है। नगर तो इस प्रथासे हीन हो रहे हैं। वैयक्तिक-जीवनसे कौटुम्बिक-जीवन अच्छा होता है। परन्तु कुटुम्बको धनसे क्षीण नहीं होना चाहिए। वर्तमान भारतमें कौटुम्बिक उद्योगको प्रोत्साहित करना चाहिए। इस प्रकार बढई, लोहार, सोनार, जुलाहे कुम्हार आदियोंके व्यवसायको कौटुम्बिक उद्योगशालामें बदलना चाहिए। अबतक बडी बडी फैक्टरियोंको ही अधिक प्रोत्साहन मिला है।

कामी वा न कदर्यो वा नृशंसः पुरुषः क्वचित्।
द्रष्टुं शक्यमऽयोध्यायां नाविद्वान् न च नास्तिकः॥

वा. रा. ६।८

' राम-राज्यमें कोई कामी इन्द्रियलोलुप नहीं था। न कोई कायर और कृपण था। क्रूर-पुरुष भी देखनेमें नहीं आते थे। और न तो कोई मूर्ख था और न कोई आत्मा, परमात्मा और पुनर्जन्म पर अविश्वास करनेवाला ही था। ' वेद-मर्यादा स्थापित की गई थी।

यह श्लोक वर्तमान भारतको ही नहीं, अपितु समस्त विश्वको चुनौती देता है। यदि आधुनिक विद्वानोंके अनुसार इसे कोरी कल्पना ही मान लें, तो भी यह स्वीकार करना ही पडेगा, कि किसी जातिमें इतनी ऊंची कल्पना अवश्य की गई थी। गांधीजी इसी कल्पनाको साकार करना चाहते थे। भारत इसी लक्ष्यकी ओर अग्रसर है। आर्थिक संघर्षको यदि कम करना है, तो नागरिकोंको संयमका मार्ग दिखाना पडेगा। सभी संघर्षोंका आदि मूल असंयमित काम-वासना ही है। यदि मूलका उन्मूलन न किया गया, तो रोगसे मुक्ति पाना असाध्य होगा। क्योंकि कामातुर न भय करता है और न उसे लज्जा ही लगती है। नास्तिक भावनासे युक्त कामी ही क्रूर हो जाता है। कामकी और असंयमित भावसे अग्रसर होनेका मुख्य कारण आत्मनिष्ठाहीन शिक्षा, जो कि मूर्खता ही कही जा सकती है। यदि आत्माको भी पांचभौतिक मान लें, तो संसारकी सारी व्यवस्था ही व्यर्थ हो जायगी। यदि मैं अपनी घडी उठा कर चूर चूर कर डालता

हूँ, तो मुझे दण्ड नहीं दिया जा सकता, परन्तु यदि मैं आत्म-हत्या या अपने पुत्रादिको कत्ल करता हूँ तो मैं दण्डका भागी क्यों माना जाता हूँ ?

इससे यह स्पष्ट हो जाता है, कि सभी मनुष्य आत्मामें विश्वास करते हैं। जो आत्मामें विश्वास करेगा, वह कभी नास्तिक नहीं हो सकता। क्योंकि तब परमात्माकी सत्ता भी मानना उसके लिए अनिवार्य हो जाता है। इसलिये रामराज्यमें नास्तिक भी नहीं थे। परन्तु आजका संसार इन्हींके हाथोंमें पड कर विनाशके विकराल गालमें बैठा है केवल दोनों जबडोंके मिलने मात्रकी देरी है। बमोंका आविष्कार नास्तिकताके द्वार पर ही किया जा रहा है। आजका शिक्षित अपनेको नास्तिक कहता हुआ आत्माभिमान और गौरवशालीनताका अनुभव करता है, परन्तु हीरोशिमा और नागासाकीका दृश्य देख कर क्यों भयभीत होता है? क्योंकि स्वयं भी तो पञ्चभौतिक है।

इस प्रकार वाल्मीकिने रामराज्यका मूलकारण सब प्रकारके संयमको ही बताया है।

सर्वे नराश्च नार्यश्च धर्म-शीलाः सुसंयताः ।
उदिताः शीलवृत्ताभ्यां महर्षयः इवामलाः ॥

'सब स्त्री-पुरुष धार्मिक और संयमी थे। अपने अच्छे स्वभाव और आचरणके द्वारा सब आदर्शके ज्योतिस्तम्भ थे। लोग ऋषियों, महर्षियोंकी भांति शुद्ध अन्तःकरणके थे।' परन्तु इस मापदण्ड द्वारा अपनेको नापते हैं, तो आजका संयमी भी रावणकी भी बराबरी नहीं कर सकता; क्योंकि वाल्मीकिने रावणको भी कहीं कहीं महात्मा कहा है। रावण राम-राज्यमें राक्षस और हन्तव्य माना गया था। आजका मानव इस आदर्शसे कोसों दूर है, पर बापूजी राम-राज्यका स्वप्न देख रहे थे। क्योंकि ये महात्मा थे और महात्मा ही राम-राज्यकी कल्पना कर सकता है। तुलसी और गांधीने ही राम-राज्यका स्वप्न देखा था। नहीं तो मुसलमानी शासनमें यह कहनेका साहस किसको था कि—

जासु राज प्रिय प्रजा दुःखारी,
सो नृप अवश नरक अधिकारी।

समर्थ गुरु रामदासके सामने भी रामराज्यका ही उद्देश्य था और उसके अनुरूप उन्हें भाग्यवशात् शिवाजी जैसे सत् शिष्य भी मिल गए थे। इतिहास इसका साक्षी है। लोग जयराम और जय हनुमान् बोलते हैं, परन्तु उनके आदर्शोंसे दूर रहते हैं। रामराज्यमें सब रामके आदर्शकी उपासना करते थे। रामने राज्य छोडा, भरतने भी उसे ठुकरा दिया। रामने पिताकी आज्ञा मानी, भरत रामकी आज्ञाके समक्ष नतमस्तक हो गये। उनकी चरण-पादुका शिर पर रखकर वापस आये। संसारमें ऐसा उज्ज्वल आदर्श कहाँ देखनेको मिलता है ? प्रजाकी आशंका पर रामने सती सीताको शुद्ध और निर्दोष जानते हुए भी त्याग दिया, जब कि आज प्रेमिकाके पीछे बहुमत पर लात मार दिया जाता है। इंग्लैन्ड का इतिहास इसका उज्ज्वल प्रमाण है। रामराज्यमें बहुमतका आदर था। क्योंकि राम स्वयं सौम्यता और आचार निष्ठाके स्वरूप थे।

नाकुण्डली नामुकुटी नास्रगी नाल्पभोगवान् ।
नामृष्टो नानुलिप्ताङ्गो नासुगन्धश्च विद्यते ॥

'राम-राज्यमें कोई ऐसा पुरुष नहीं था, जो कानमें कुण्डल तथा शिर पर मुकुट न धारण करता हो। सभी रत्नों और फूलोंके हार धारण करते थे। सबके पास भोग-विलासकी प्रचुर सामग्री थी।' परन्तु संयमकी मर्यादासे लोग बाहर नहीं थे। सबके शरीर स्वच्छ और सुन्दर थे। सब सुगंधित द्रव्योंसे शरीरको सुगंधित रखते थे। उस समय कोई ऐसा व्यक्ति नहीं था, जो बिना सुगंधित वस्तुसे सुवासित न हो।

जो लोग आज उन्नत-युगके हामी हैं, उन्हें इस श्लोकको आंख खोल कर पढना चाहिए। आज भी इतने सम्पन्न लोग किस राज्यमें पाये जाते हैं। यह था धर्मराज्यका स्वरूप। प्रत्येक मनुष्य कितना सोना अपने शरीर पर धारण करता था सोचनेकी बात है। यदि आजका समय होता, तो दिन दहाडे डाके पडते और असंख्य हत्यायें होतीं। उस समयका फैशन आजके फैशनसे बहुत उत्कृष्ट था। रामकी तरफसे प्रजायें धन रखनेमें सर्वथा स्वतंत्र थीं।

नामृष्टभोजी नादाता नाप्यनङ्गदनिष्कधृक् ।
नाहस्ताभरणो वापि दृश्यते नाप्यनात्मवान् ॥

'राम-राज्यमें कोई अभक्ष्य-भोजी नहीं था। कोई ऐसा नहीं था जो दान न देता हो। सोनेके आभूषण सभी धारण करते थे। सब हाथोंमें अलङ्कार धारण करते थे। सब आत्मवान् थे।' इस प्रकार महर्षि वाल्मीकिने अयोध्याकी आर्थिक स्थितिका चित्र खींचा। राष्ट्रमें धनाभाव भी महान् दुःखका कारण होता है। उस समय नोटोंका प्रचलन नहीं था। उस समय कुबेर अन्तर्राष्ट्रीय कोशका अध्यक्ष था। कुबेरका अर्थ ही धनाध्यक्ष था। यह एक पद माना जाता था।

नानाहिताग्निर्नायज्वा न क्षुद्रो वा न तस्करः।
कश्चिदासीदयोध्यायां न चावृत्तो न संकरः॥

" सब देवयज्ञ (हवन) और ब्रह्मयज्ञ (सन्ध्या), पितृ-यज्ञ, अतिथियज्ञ, और बलिवैश्व अर्थात् गरीबों, अङ्ग-हीनों और कुत्तों आदिको भोजन प्रदान करना, इन यज्ञोंको प्रति-दिन करते थे। न कोई नीच था और न कोई चोर। सब जीविका सम्पन्न थे। वर्णसंकर लोगोंका तो नाम ही नहीं था। "

ऋषियोंने मानव-मात्रको स्वस्थ रहनेके लिये अपनी दीर्घ-दृष्टिसे आहार-समय, यज्ञ, हवन आदि साधन निश्चित कर रखा था। सन्तुलित और सात्विक भोजन ही मानवको सर्व-शक्ति समन्वित और स्वस्थ बनाता है। इस लिए श्लोकमें 'नामृष्ट-भोजी' शब्द आया है। उस समय लोग पूर्ण स्वस्थ थे। फल, फूल, कन्द, मूल, दुग्ध और अन्न ही भोजन करते थे। यज्ञोंके द्वारा पवित्र कर्मवाले थे। हवनसे अपने वातावरणको शुद्ध करते थे, अतः सब स्वस्थ थे। आजका मनुष्य रोगका आखेट क्यों हो रहा है, उसका कारण यही है कि वह नास्तिक, यज्ञ न करनेवाला और आमिष-भोजी है।

स्वकर्म-निरता नित्यं ब्राह्मणा विजितेन्द्रियाः।
दानाध्ययनशीलाश्च संयताश्च प्रतिग्रहे॥

" राम-राज्यमें विद्वान् लोग अपने अपने कामोंमें लगे रहते थे। इन्द्रियोंको अपने वशमें रखते थे। दान देते थे, पढते थे और दान लेनेमें संयमित थे। उनकी विद्या उनके धार्मिक आचरणसे अलंकृत थी। "

आजकी विद्वन्मण्डली 'मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयङ्करः' की कोटिमें आती है। वे तो विद्याके भारको ढोते हैं परन्तु विद्याकी सुगंधिसे विहीन हैं। इधर ब्राह्मण मानी लोगों पर भी दृष्टि डालें, तो देखेंगे कि—

विप्रैर्भागवतीवार्ता गेहे गेहे जने जने।
कारिता कण-लोभेन कथासारस्ततो गतः॥
पण्डितास्तु कलत्रेण रमन्ते महिषा इव।
पुत्रोत्पादने दक्षा अदक्षा मुक्तिसाधने॥
मा. मा. ७१, ७५

मन्दाः सुमन्दमतयो मन्दभाग्या ह्युपद्रुताः।
पाखण्ड-निरताः सन्तो विरक्ताः सपरिग्रहाः॥
भा. मा. ३२

" आजका ब्राह्मण यदि धनी है तो अंग्रेजी पढेगा, संस्कृत नहीं। यदि संस्कृत पढता भी है तो साधारण। कण-लोभ-से भागवतकी कथा कहता फिरता है। आचार-विचार दोनों से पतित भोगी और लोभी है। दान लेनेमें आगे और दान देनेमें पीछे रहता है। पाखण्डमें सर्वदा लगा रहता है और वास्तविकतासे परे रहता है। " राम-राज्यका ब्राह्मण दानी, वेदज्ञ होता था। इन्द्रियोंको अपने वशमें रखता था। दान लेनेमें सदा संयत रहता था। अध्ययन और अध्यापनमें अपना जीवन बिताता था। वसिष्ठ ऐसे त्यागी ब्राह्मण राम राज्यमें मौजूद थे। जिन्होंने अपने ब्राह्मबलसे क्षात्र-बलको जीत लिया था। यदि हम राम-राज्य लाना चाहते हैं तो आधुनिक शिक्षित समाजको आचारनिष्ठ और आत्मरत बनाना पडेगा। क्योंकि जनता इन्हीं लोगोंकी आँखोंसे देखती है और इन्हींका अनुकरण करती है।

न नास्तिको नानृतको न कश्चिदबहुश्रुतः।
नासूयको न चाशक्तो नाविद्वान् विद्यते तदा॥

" न कोई नास्तिक अर्थात् ज्ञान-निन्दक, न असत्यवादी और न कोई अल्प-शिक्षित था। सब आस्तिक, सत्यवादी, पूर्ण-विद्वान् थे। न तो कोई किसीकी निन्दा करता था और न कोई निर्बल था। "

सम्प्रति असत्य और निन्दा मानवकी कुशलताके अङ्ग माने जाते हैं। नास्तिक होना तो आजका फैशन ही है। अशिक्षाभाव भी अपना पैर जमाये है। अतः स्वतंत्र-भारतको इन कुरीतियोंसे बचा कर राम-राज्यके योग्य बनाना है। जुआ, शराब और अभक्ष्य इन सबका मूल कारण है। हमें इन दुर्गुणोंसे राष्ट्रको बचाना है।

दीर्घायुषो नराः सर्वे धर्मं सत्यं च संश्रिताः।
सहिताः पुत्र-पौत्राश्च नित्यं स्त्रीभिः पुरोत्तमे॥

" लोग स्वस्थ तथा दीर्घायु थे। सत्य और धर्ममें सदा लगे रहते थे। उनका परिवार भरा पूरा था। परिवार आपसके आदर्शसे युक्त था। सब एक दूसरेकी आज्ञाका पालन करते थे। "

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम्॥१॥
मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदतु भद्रया॥२॥
अथर्ववेद कां. ३। सू. ३०। मं. २, ३॥

शतमवीनाः स्याम । यजुर्वेद ३६।२४

" पुत्र पिताके शुद्ध आचरणका अनुकरण करे। पुत्र माताको मानसिक-तुष्टि सेवाओं द्वारा प्रदान करे। स्त्री पतिके लिये प्रिय-वचन बोले जो कि हृदयको शान्ति प्रदान करे। "

" भाईसे भाई प्रेम करे, वे कभी भी आपसमें द्वेष न करें। इसी प्रकार बहन बहनसे प्रेम करे। सबका हृदय समान हो। सब व्रती हों तथा आपसमें कल्याण-प्रद वचनोंका व्यवहार करें। " रामका परिवार इस आदर्श पर श्रद्धा-पूर्वक चलता था।

हमें अपने परिवारका संगठन उक्त आदर्शों पर ही करना होगा। आजका पारिवारिक जीवन बहुत ही कष्ट-प्रद हो रहा है। क्योंकि हम अपना सुमार्ग भूल कर अर्वाचीन मार्ग पर चल पड़े हैं। यही कारण है कि तलाक तथा वंश-वृद्धिके आखेट हो रहे हैं। परिवार नियोजनके लिये बापूके आदर्शको ठुकरा कर अभद्र और दूषित औषधियों और साधनोंका प्रयोग कर रहे हैं। यह हम भूल गये कि---

कामात्मता न प्रशस्ता न चैवास्त्यकामता।

अर्थात् न तो अतिकामीपना ही अच्छा है और न भोग-हीन होना ही अच्छा है।

प्रापणात् सर्वकामानां परित्यागो विशिष्यते।

मनु ॥

" सब भोगकी सामग्रियोंको प्राप्त करनेकी अपेक्षा उनका त्यागना ही अच्छा है, क्योंकि जैसे घीसे अग्नि शान्त नहीं होती, उसी प्रकार भोगेच्छा भोगसे शान्त न होकर बढ़ती है। " अतः उसे संयमित करना ही श्रेष्ठ है। भोग और रोगका चोलीदामनका साथ है। असंयमित भोग ही रोगके कारण होते हैं, ' भोगे रोगभयम् ' कहा गया है।

अतः दीर्घायुके लिए आहार और विहार पर संयम रखना होगा। तभी हमारे परिवार सुखधाम बनेंगे। अन्यथा परिवार विघटित और स्वच्छन्दचारी होकर गृहस्थीको नष्ट-भ्रष्ट कर देगा, दरिद्रता, कलह और रोग परिवारको आ घेरेगा। परिवारको रामके परिवार पर ही चलाना पड़ेगा।

क्षत्रं ब्रह्म-मुखं चासीत् वैश्याः क्षत्रमनुव्रताः।
शूद्राः स्वधर्मनिरताश्चीन्वर्णानुपचारिणः॥

यह श्लोक हमें कर्म-विभाजनका मौलिक मंत्र प्रदान करता है। रामराज्यमें स्वच्छन्दता और उच्छृङ्खलताका नियंत्रण बड़ी खूबीके साथ किया गया था। राज्यमें मुख्य चार शक्तियां प्रधान होती हैं। इन्हें हमने गत-पृष्ठोंमें ब्राह्म, क्षात्र, धन, श्रमके नामसे अवगत कराया है। ब्राह्म-शक्तिका नियन्त्रण ब्रह्माण्डका नायक स्वयं करता है और ब्राह्मशक्ति द्वारा क्षात्र-शक्तिका नियन्त्रण होता है और धनोत्पादक-वर्ग ब्राह्म और क्षात्रशक्तिसे संयमित होता है। शूद्र-वर्ग अर्थात् समाजके आधार श्रमिक-वर्ग अपने श्रममें लगे हुये ब्राह्म, क्षात्र और धनाध्यक्ष-वर्गसे सहायता प्राप्त करते हुए उक्त तीनों शक्तियोंकी सहायता करता है।

घटनाचक्रमें पड़ी हुई भारतीयतारूपी त्रिपथगा वैदिक-संस्कृतिसे निकल कर सुर-सरिकी तरह सबको अभ्युदयसे निःश्रेयसतक पहुंचानेकी शक्ति रखती है, शेष संस्कृतियाँ मानवको अर्थ और कामके अगाध रत्नाकरमें छोड़ देती हैं, तब हमारी भारतीयता उन्हें आत्म-ज्ञानका महा-पोत प्रदान करती है और जो उस पर सवार होते हैं, वे पार होते हैं एवं अन्य मनुष्य भयंकर रोग और मृत्युके बार बार ग्रास बनते हैं। भारतीयताका भव्य-विशाल-भवन इन्हीं चार-वर्ण-स्तम्भोंपर आधारित है। इस समय स्वतन्त्र-भारतमें ब्राह्म-शक्तिका अभाव तो नहीं कह सकते, परन्तु कुछ ऐसा ही लगता है। यद्यपि विनोबाको कुछ सीमातक ब्राह्मशक्तिका प्रतीक माना जा सकता है। परन्तु फिर भी ब्राह्म-शक्तिका कुछ अभाव सा इसलिए है कि इनका दृष्टि-कोण केवल भूदान-यज्ञके प्रति प्रधानतया हो गया है। कुछ समय पूर्व इन्होंने राष्ट्रको एक सुझाव दिया था, कि डाकुओंको, जो अपना जीवन विनोबाजीको देना चाहते हैं, जेलसे मुक्त कर दिया जाय। यह एक ऐसी घटना थी, जिसका हमें समादर करना था। राष्ट्रका कर्तव्य था कि उनकी बातोंका आंशिक परीक्षण करना। भारतका अतीत इसका प्रतिवाद नहीं करता और न किसी राजनीतिक पार्टीने इस प्रतिवाद किया। विनोबाजीके इस परीक्षणका प्रत्याख्यान कानूनके ठेकेदारोंने किया था। जिन्हें ब्राह्म-शक्तिका न तो आभास है और न विश्वास। वे तो स्वतन्त्रताके अहिंसात्मक संग्रामसे आंखें मूंद लेते हैं। डाकुओंके अन्दर अगम शक्ति रहती है, जो कि घटना-चक्रसे विनाशात्मक हो जाती है। महात्मा उसको शिवात्मक बना सकता है। वाल्मीकि और अङ्गुलिमाल आदि ऐतिहासिक उज्ज्वल प्रमाण हैं।

यदि भारतमें राम-राज्य स्थापित करना है, तो शासनको विद्वानों द्वारा संयमित होना पड़ेगा। राष्ट्रका प्रमुख कर्तव्य

होगा कि ब्राह्म-शक्तिका समादर तथा उसका विकास करें। नहीं तो, शासन असंयमित और स्वच्छन्द होकर मनमानी करेगा। द्वेषसे प्रभावित होकर दण्ड न्यायका अनुसरण नहीं कर सकेंगे। जैसे एक बलवान् कुत्तेको खाते हुए देखकर अन्य निर्बल कुत्ते दूरसे ही गुर्राते हैं, वैसे ही करेंगे। शासनके उचित कार्योंका भी द्वेष-वश खण्डन करने लगेंगे। अतः शासनपर त्यागी-विद्वान्-महात्माओंका ही नियन्त्रण होना चाहिए। रामराज्यमें प्रमुखरूपसे वशिष्ठ और विश्वामित्र इस महान् उत्तरदायित्वको संभालते थे। शासनको उनका आदेश मानना पडता था।

राम-राज्यमें क्षत्रियत्व यानी शासन ब्राह्म-शक्तिसे संयमित होकर धनाध्यक्षों और श्रमिकोंको समुचित मार्ग पर चलाता था। ब्राह्म-शक्ति भी जबतक प्रलोभनका आखेट नहीं बनी, तबतक वह क्षात्र-शक्तिसे शासित नहीं हुई। परिवर्तनके प्रभावने पण्डित और ज्ञानियोंको क्षात्र-शक्तिका दास बनाया। अतः यह उक्ति चरितार्थ हुई कि—

को न याति वशं लोके मुखपिण्डेन पूरितः।
मृदङ्गो मुख-लेपेन करोति मधुरध्वनिम् ॥

इस प्रकार जब ब्राह्म-शक्ति प्रलोभका आखेट हो जाती है, तो क्षात्र-शक्तिपर अनुशासन नहीं कर सकती। इसी कारणसे ब्राह्मणके लिए भिक्षाका ही विधान है। अन्यथा ब्राह्म-शक्ति को रात-दिन ठकुर-सुहाती करनी पडती है। इस प्रकार क्षात्र-शक्ति ठकुर-सुहाती सुनते सुनते इन्द्रिय-लोलुप हो जाती है। जो कि आगे चलकर रक्षककी जगह भक्षक बन जाती है। यह तो घटना-चक्र है, जो कि इस सिद्धान्तको प्रमाणित करता है। वसिष्ठ, विश्वामित्र आदिमें और द्रोणाचार्य और व्यासादिमें उसने बडा अन्तर स्थापित कर दिया।

सारांश यह है कि यदि हम राष्ट्र-पिता बापूके सपूत होनेका दावा करते हैं तो उनके राम-राज्यके स्वप्नको पूरा करना पडेगा। इसके लिए राष्ट्रको ब्राह्म-शक्तिका अर्जन करना ही पडेगा। राष्ट्रमें ब्राह्म-शक्तिके अनुशासनमें ही शासन-कार्य चलाना पडेगा, अन्यथा राम-राज्य खपुष्प और शशविषाण-मात्र रहेगा।

और यदि ऐसा रामराज्य हो गया तो—

कश्चिन्नरो वा नारी वा नाश्रीमानाप्यरूपवान्।
द्रष्टुं शक्यमयोध्यायां नापि राजन्यभक्तिमान्॥१॥
प्रहृष्टमुदितो लोकस्तुष्टः पुष्टः सुधार्मिकः।
निरामयो ह्यरोगश्च दुर्भिक्षभयवर्जितः ॥ २॥

राम-राज्यमें सारी प्रजा श्री तथा लक्ष्मीसे सम्पन्न होगी। प्रजा राष्ट्र-भक्त होगी। गरीबी और बेरोजगारीका कहीं नाम न होगा। कोई भी शत्रु भारतकी तरफ कुदृष्टि भी नहीं उठा सकेगा। प्रजा कर्तव्य-निष्ठ होगी। इसके अन्दर तुष्टि और पुष्टि होगी। लोग स्वस्थ-मन तथा निरोग होंगे। दुर्भिक्ष और भयका कोई शिकार न होना पडेगा। सब लोगोंकी नैतिकता बलिष्ठ होगी।

नासीत् पुरे वा राष्ट्रे वा मृषा-वादी नरः क्वचित्।
कश्चिन्न दुष्टस्तत्रासीत् परदाररतो नरः॥ १ ॥
प्रशान्तं सर्वमेवासीत् राष्ट्रं पुरवरं च तत्।
सुवाससः सुवेषाश्च ते च सर्वे शुचिव्रताः॥ २॥

हमारे सुराज्यमें कोई असत्य न बोलेगा, क्योंकि सब प्रहृष्ट और प्रमुदित होते हुये लक्ष्मीवान् और श्रीमान् होंगे और न कोई दुष्ट होगा और न कोई पुरुष व्यभिचारी होगा और जब पुरुष ही व्यभिचारी न होंगे तो स्त्रियाँ भी स्वभावतः साध्वी ही होंगी। क्योंकि स्त्रियोंमें व्यभिचारका रोग पुरुषों द्वारा प्रायशः आता है। सब जगह शान्ति ही शान्ति होगी, जो कि क्रान्तिसे नहीं आत्म-ज्ञानके ज्योति-पुञ्जसे प्राप्त होगी। वास्तवमें आत्म-ज्ञान पर आधारित क्रान्ति ही वास्तविक शान्तिकी जननी होती है। भारतीय और पाश्चात्य क्रान्तिमें यही अन्तर है कि एककी ज्योति बुद्धि और हृदयको प्रभावित करती है, जब कि दूसरी भयके द्वारा केवल बुद्धिको प्रभावित करती है। जनता सुवेष और सुवस्त्रोंसे अलंकृत होगी। पञ्चशील द्वारा राष्ट्रमें प्रजा पवित्र व्रतवाली होगी। तब भारत पुनः संसारमें उद्घोष करेगा कि—

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः।
नानाहिताग्निर्नाविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः॥

वा. राम.

यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह।
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना॥

यजुर्वेद अ. २०, मं. २५

तब हमारा राष्ट्र-पति देश-विदेशमें उद्घोष करेगा कि "भारत-राष्ट्रमें न कोई मनसा, वाचा, कर्मणा चोर है और न कोई कायर तथा शराबी है। न कोई नास्तिक है और न कोई मूर्ख है। इस प्रकार न कोई व्यभिचारी है और न कोई व्यभिचारिणी।"

हमारा राष्ट्र ब्राह्म और क्षात्रशक्तिके समन्वयसे संचालित है। इसीलिये वह यज्ञ और पुण्यलोक है। यहाँके विद्वान्

आत्म-ज्योतिसे देव हैं। यही आत्मज्योति "भा" है; इसीमें हम 'रत' हैं। इसलिये हमारा देश भारत है। हिन्दुस्तानने ही स्वतंत्र होकर अपने अतीत गौरव भारतको प्राप्त किया है। यही राम-राज्य है।

* * *

पञ्चम मुक्तिका
भारतीय-संस्कृति

सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा
स प्रथमो वरुणो मित्रोऽग्निः। यजुर्वेद ७।१४

भारतीय-संस्कृति विश्वको सम्यक् विकसित करनेकी क्षमता अपनेमें समाहित करनेके कारण श्रेष्ठतमा है। इसमें उत्पादकत्व, स्थायित्व, अर्थात् पालन और संहारकत्व तीनों गुण पाये जाते हैं। यह अन्तर्निहित शक्तियोंको सम्यक् विकसित करती हुई उनके बाधक-शत्रुओंका शमन करती है। इसकी सहायतासे मानव आत्म-शक्तिका वितरण करने वाला होता है। स्वयं आनन्दी होता हुआ दूसरोंको भी आनन्दित करता है। प्रभुकी उत्पादकशक्ति और पोषकत्व-शक्तिको हम अपनेमें धारण करके अन्योंको भी इसके योग्य बना सकते हैं। संस्कृति योग और क्षेम दोनोंको धारण करती है। इसके द्वारा परिशुद्धत्व गुण प्राप्त होता है। यही सम्यक् विकासकी साधिका है। अभ्युदय और निःश्रेयसकी प्रदीपिका है। इन दोनोंमें यही समन्वय स्थापित करती है।

सम् उपसर्ग पूर्वक 'कृ' धातुसे (सम्+कृ) संस्कृति शब्द निष्पन्न होता है। समका अर्थ सम्यक् (Well) और कृका अर्थ करना है। 'जिसके द्वारा आत्मा और शरीरका पूर्ण विकास (Growth) हो, उसीको संस्कृति कहते हैं। इस प्रकार संस्कृत और संस्कार शब्द भी विचारणीय हैं। संस्कृतिसे मानव संस्कृत होता है और जिन व्यापारों या कर्मोंसे मानव संस्कृत होता है, उन्हें संस्कार कहते हैं। संस्कृति एक ऐसा कारखाना है जो पूर्ण-मानव तैय्यार करता है। ऋषियोंने संस्कारोंको सोलह भागोंमें बांट रखा है। जिसका उल्लेख आगे चल कर करेंगे।

संसार कर्म-क्षेत्र है। यज्ञ या धर्म ही कर्म हैं। मानव कुशल कृषक है। कृषिके लिए चतुर किसान, परिष्कृत-खेत और उत्तम बीजकी आवश्यकता होती है। चतुर किसान सुन्दर खाद और जलकी सहायतासे अपने सुनिरीक्षणमें उत्तम फसल तैय्यार करता है।

कृषी निरावहिं चतुर किसाना।
जिमि बुध तजहिं मोहमदमाना॥

इस प्रकार संसार-क्षेत्रमें मानव ही किसान है। क्योंकि इसका जन्म कर्म और भोग योनि (शरीर) में हुआ है। जैसे किसान प्रथम बीज बोता है और निरा, सींच कर फल तैय्यार करता है, उसी प्रकार मानव भाग्यका बीज भावी-कर्म-क्षेत्रमें बोता है और आगेके लिये भाग्यका निर्माण करता है। किसान कुछ सुन्दर बीज अपने अन्तःकरण अन्नागारमें सुरक्षित रखता है इसीलिये तुलसीदासने चतुर किसान कहा है। इसे हम आजके शब्दोंमें Trained and perfect agriculturist कह सकते हैं। "जिन क्रिया कलापोंसे चतुर किसान उत्तम-कृषि उत्पन्न करता है, उसे कृषि-कर्म कहते हैं, इसी प्रकार मानव जिन कार्य-कलापोंसे अभ्युदयको निःश्रेयसका उत्पादक बनाता है, उन्हें संस्कृति कहते हैं। परिशुद्ध अभ्युदय ही मोक्षका साधक बन सकता है। जिन कर्मोंसे अभ्युदयको परिष्कृत एवं परिपूत रखते हैं उन्हें हम संस्कृति कहते हैं।"

'आत्मानं विजानीहि' भारतीय वाङ्मयका एक-मूल सन्देश रहा है। आध्यात्मिक-ज्ञानके साथ शारीरिक और मानसिक उत्थान भी आवश्यक माने गये हैं। पुरुषार्थ चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) के प्राप्तिके साधक वर्णाश्रम धर्मकी लोक-कल्याण-कारी सुदृढ नींव पर ही भारतीय-संस्कृतिका भवन निर्मित हुआ है। सत्य, अहिंसा, त्याग और सेवा ये इस भवनके चार मुख्य स्तम्भ हैं।'

—श्रीकृष्णदत्त वाजपेयी

"आर्य संस्कृति" नामक निबन्धमें इसी प्रकार डा. मुंशीराम शर्माने संस्कृतिके मुख्य छः गुण माने हैं। प्रथम गुण आर्यसंस्कृतिका आर्यत्व (सज्जनत्व) की रक्षा और अनार्यत्व (दुष्टता) का विनाश, दूसरा गुण यज्ञ (शुभ-कर्म) और उसका विस्तार, तीसरा गुण व्यक्तित्वके विकासके लिए आश्रम व्यवस्था, चौथा गुण गुण-कर्म-स्वभावानुसार समाज तथा राष्ट्रके स्थायित्वके लिए कर्म-विभाजन अर्थात् वर्ण व्यवस्था, पञ्चम गुण आस्तिकता और छठा गुण कर्म-व्यवस्था और पुनर्जन्म पर विश्वास।

इस प्रकार इन दोनों महानुभावोंकी विचार-पद्धतिका आश्रयण करके ही हम भारतीय-संस्कृति पर प्रकाश डालने-

का प्रयास करेंगे। पण्डित जवाहरलाल अपने ' विश्व इतिहासकी झलक " पृष्ठ ५६ पर सभ्यता और संस्कृति पर लिखते हैं। ' सभ्यता और संस्कृतिकी परिभाषा मुश्किल है और मैं इसकी परिभाषा करनेकी कोशिश करूंगा भी नहीं। लेकिन संस्कृतिके अन्दर पाई जानेवाली बातोंमेंसे निस्सन्देह एक चीज यह भी है—

" अपने ऊपर संयम और दूसरोंकी सुविधाका लिहाज। अगर किसी आदमीमें अपनेमें संयम नहीं पाया जाता और वह दूसरोंकी सुविधाका कोई ख्याल नहीं करता, तो हम निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि वह आदमी असभ्य और असंस्कृत है।"

यदि तुम भारतीय-संस्कृतिकी अजस्रपरिमल-धारा-वाहिनी - त्रिपथगामें परिपूत होना चाहते हो, तो स्वामी दयानन्दका जीवन-चरित्र और इनका साहित्य, पूज्य बापूका जीवन-चरित्र तथा इनका साहित्य पढो, मनन तथा आचरण करो, अन्यथा पश्चिमको द्वेष-पूर्ण रचनाओंसे भारतीयतासे सर्वदाके लिए वञ्चित हो जावोगे।

श्री गङ्गाप्रसादजी उपाध्याय अपने Vedic Culture में कहते हैं—

The world is a garden. The soul or animate beings are tiny seeds with a store potentialities inherent in them. The richness of soil and the efficieney of gardenership are necessary for the full growth of seeds. Similarly, certain environments and conditions are essential for bringing the potentialities of animate to full development.

' इस संसार-उद्यानमें हमारी आत्मायें ही शरीरकी क्यारियोंमें आरोपित हैं। इन्हें ज्ञान तथा सदुपदेशोंके जलसे अभिसिञ्चित कर यम और नियमकी खाद देकर पुष्पित और पल्लवित करना चतुर माळीका काम है। '

Culture is krishi or growth of the innermost self as well as Sanskriti or elimination of what is foreign. The real growth always needs the elimination of foreign matter, because foreign matter always hampers growth.

' संस्कृति एक प्रकारकी कृषि है अथवा आन्तरिक-जीवन तत्व तथा संस्कृतिका विकास है। अथवा विदेशी-तत्वोंका निराकरण। वास्तविक वृद्धि अथवा विकासके हेतु विदेशी तत्वोंका निराकरण आवश्यक है, क्योंकि विदेशीतत्व सदैव विकासमें बाधक होते हैं। '

भारतीय-संस्कृतिके मुख्य मुख्य अङ्गोंपर भी विचार करना आवश्यक है। क्योंकि किसी वस्तुको हम तभी समझ सकते हैं। जब उसके अङ्गोंको अच्छी तरह समझ लें। संसारके समस्त मानव-जातिको दो भागोंमें विभक्त कर सकते हैं और इसे आर्य और अनार्य नामोंसे पुकार सकते हैं। मानवताके रक्षक और मानवीय गुणोंसे युक्त मनुष्यको आर्य कहते हैं। अनार्य मानवीय-गुणोंसे रहित और मानवताके नाशक होते हैं। आर्योंकी वृद्धिसे संसारमें सुख और शान्ति की स्थापना होती है। इसी प्रकार अनार्योंकी वृद्धिसे संसारमें सुख और शान्ति विनष्ट हो जाती है, अशान्ति, संघर्ष और युद्धका बाजार गर्म हो जाता है। आर्य संस्कृत, सभ्य, सदाचारी और याज्ञिक तथा व्रती होते हैं। अनार्य असंस्कृत, अव्रती और अयाज्ञिक होते हैं। अतः संसारमें सुख और शान्तिकी स्थापनाके लिये अनार्योंको सन्मार्ग पर चलाना पडेगा। इन्हें प्रथम ब्राह्मशक्ति अपने आदर्शों और उपदेशोंसे सन्मार्गपर चलानेकी कोशिश करती है। परन्तु ये यदि ब्राह्मशक्तिका अनादर करते हैं, तो आर्य संस्कृति उनके सुधारके लिए क्षात्र-शक्तिका उपयोग करती है ' दण्डेन गौगर्दभौ ' वाली नीति लागू करती है। इस दण्डके तीन भेद होते हैं, जिन्हें शारीरिक दण्ड, प्राणदण्ड और देश निष्कासनके नामोंसे पुकारते हैं।

आर्य बननेके लिये व्रत और यज्ञोंका अनुष्ठान आवश्यक होता है। व्रत और संकल्प यज्ञानुष्ठानके लिये आवश्यक हैं। मनमें शिव अर्थात् कल्याणकी भावनाको स्थिर करना ही संकल्प है। अन्यथा व्रतके द्वारा दूसरोंका अहित हो सकता है, अतः वेदमें ' तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ' की प्रार्थना है। सत्यका व्रत, ब्रह्मचर्यका व्रत और अहिंसाका व्रत शिवसंकल्पयुक्त होकर धारण करे। इसके पश्चात् यज्ञ अर्थात् शुभ कर्मोंका अनुष्ठान करना चाहिए। ब्रह्मयज्ञ-उपासना तथा स्वाध्याय, देवयज्ञ- हवन करना, पितृयज्ञ-माता-पिता तथा वृद्ध जनोंकी सेवा, अतिथियज्ञ- घरपर आये हुये मेहमानोंकी सेवा तथा सत्कार करना, बलिवैश्वदेवयज्ञ- अपङ्गों तथा दुःखी प्राणियोंको भोजन देना, ये आर्योंके दैनिक-कर्म होते हैं। [क्रमशः]

स्वाध्याय

[लेखक— श्री विश्वामित्र शर्मा, बिषहर अंगक झभौरा (रीवा म. प्र.]

[गताङ्कसे आगे]

प्राचीन संस्कृति

पूर्वकालमें भारतमें एक सुसंस्कृत समाज था। उसकी संस्कृति मिश्र ईराकके पुरातन धर्मोंके समान थी। भारतकी प्राचीन संस्कृति एशिया माइनर और भूमध्य सागरीय प्रदेशोंकी संस्कृतियोंसे अधिक समानता रखती है। मिश्र, क्रीट, सुमेर, असीरिया, बेबीलोनियां और खाल्डियाकी संस्कृति और मानव वंशमें बहुत समानता है। इन देशोंमें भी प्राचीनकालमें शिव, विष्णु और कालीकी पूजा होती थी। नागपूजा, पितृपूजा, लिंगपूजा तथा ग्रहपूजा भी प्रचलित थी। देवदासी पद्धति, मूर्तिपूजन, मुहूर्त फल, ज्योतिष, पुजारी आदि भूमध्यसागरीय संस्कृतिके अंग हैं। सिन्धु नदियोंके तीर पर बढी हुई प्राचीन संस्कृतिका उत्तराधिकार हमारी हिन्दू संस्कृतिको मिला है।

यज्ञोंके विस्तारके लिए ही ब्राह्मण ग्रन्थोंकी रचना हुई, परन्तु जब इनकी रचना हो रही थी तब भारतमें कुछ ऐसे सम्प्रदाय उत्पन्न हो रहे थे जो यज्ञ कर्मसे श्रद्धा नहीं रखते थे, (मुण्डकोपनिषद् १-२००)। उपनिषद् आडम्बरपूर्ण यज्ञकी निन्दा करते हैं, कुछ श्रुतियां भी ऐसी हैं जो इनके आडम्बरमय कर्मकाण्डकी निन्दा करती हैं (ऋग्वेद १०—८२—७)। सांख्यके निर्माता कपिलने तीव्र उक्तियोंसे कर्मकाण्डका विरोध करके ज्ञानको ही मुक्तिका उपाय बताया है।

जो कामयोग और स्वर्गके माननेवाले और कर्ममें अनेक प्रकारकी विधि करनेवाले तथा भोग ऐश्वर्यमें ही प्रीति रखते हैं, ऐसे लोग समाधिको नहीं प्राप्त हो सकते। हे अर्जुन वेद त्रिगुणात्मक हैं, इसलिए तू निर्द्वन्द्व, शुद्धचित्त, योग-क्षेमका त्यागी, आत्मनिष्ठ हो जा।

वास्तवमें देखा जाय तो यज्ञों और उसकी पद्धतियोंका ऋग्वेदमें बहुत कम तथा अस्पष्ट उल्लेख है। यज्ञोंका जोर तो यजुर्वेदमें हुआ, यजुर्वेदमें यज्ञ विधिका पूरा वर्णन है। शुक्ल यजुर्वेदका तो पृथक्करण ही यज्ञके लिए हुआ। सच तो यों है कि किसी हदतक ऋग्वेद देवताओंकी, तथा यजुर्वेद आर्योंकी सभ्यताके द्योतक हैं।

यजुर्वेदकालमें आर्योंके बडे बडे राज्य फैल रहे थे। नगर व्यवस्था और वर्णोंका संगठन होगया था। ब्राह्मण क्षत्रिय वर्ण बडी तेजीसे संगठित हो रहे थे। ऋग्वेदके सूक्त और यजुर्वेद तथा उसके शतपथ आदि ब्राह्मण ग्रंथोंका गंभीर मनन करनेसे पता लगता है कि यजुर्वेद कालमें आर्योंका मुख्य धर्म अग्नि होत्र, जो प्रातः सायंकालके साधारण नित्य कर्मसे लेकर बडे बडे वैधानिक राजसूय यज्ञों और अश्वमेध यज्ञोंतक जो कई वर्षोंमें समाप्त होते थे, बन गया था।

पुरोहितोंको दक्षिणाका लालच बढ रहा था और वे धन सोना, चांदी, जवाहरात, घोडा, गाडी, गाय, खच्चर, दास, दासी, खेत, घर और हाथियोंको ठाठसे रखते थे, यज्ञमें सोना दान करना उचित समझा जाता था, चांदी देनेका निषेध था। छान्दोग्य ५,१३,१७,१९,७,२४। शतपथ ब्राह्मण ३.२.४८। तैत्तरीय ३० १.५,१२।

वेदोंमें जो 'अज' का यज्ञ करनेको लिखा है सो अजका अर्थ बकरा नहीं, बीज है, अन्न। और हिंसा वर्जित की है। न हिंसा धर्म उच्यते। हिंसा धर्म नहीं है। वह कोई धर्म नहीं है जहां पशु मारे जांय।

चार्वाक सम्प्रदायवालोंका प्रादुर्भाव उन्हीं दिनों हुआ था, जब खूब पशुहिंसा, यज्ञ और खाना पीना प्रचलित था, तब उन्होंने उपहाससे लिखा है— यदि पशुओंको मारनेसे स्वर्ग मिलता है तो यजमान अपने पिताको मारकर हवन कर क्यों नहीं उन्हें स्वर्ग भेज देता।

अध्याय १४३, मत्स्य पुराणमें यज्ञके विषयमें मनोरंजक वर्णन है। अ. ३४०, महाभारत और श्रीमद्भागवत ४,२५,७-८ में पशु यज्ञका वर्णन मिलता है, जिससे मालूम होता है

कि पशु यज्ञ और हिंसा वेदोंसे बहुत पीछे चली थी। ऋग्वेद दूध, यजुर्वेद घृत, सोमवेद सोमकी और अथर्ववेद मधुकी आहुतियोंकी विधि बताते हैं।

परन्तु ब्राह्मणग्रंथ, इतिहास, पुराण, कल्प गाथा, नराशंसी मेद (चर्बी) की आहुति कहते हैं। तैत्तरीय २।९।२

सप्तसिंधु देशके यज्ञोंमें कदाचित्, गोवध होता था, परन्तु गंगा जमुनाकी ओर गोवधका बहुत विरोध था, कृष्ण बडे भारी गो रक्षक या गोवध विरोधी थे। महाभारतमें पशु वधका विरोध है। बुद्धने यज्ञमें पशुवधका बहुत विरोध किया। बुद्धकालमें यज्ञोंका जोर था, परन्तु जनता घृणा करने लग गयी थी। परन्तु राजा और धनी ब्राह्मण जबरदस्ती किसानोंसे पशु छीन लाते थे और यज्ञ-रूपमें वध कर डालते थे। दो वेदियां बनती थीं। कोशलसंयुत्त सुत्तमें इसका वर्णन है कि दण्डभयसे रोते हुए कर्मचारी यज्ञका सब कार्य करते थे, और १०२ नहीं, पांचसौ पांचसौ बैल, बछडे, बछिया, भेड, बकरोंका यज्ञ किया जाता था।

ऐहिक जीवनकी आवश्यकताओं और भौतिक साधनोंकी उपलब्धिके लिए अपने विश्वासके कारण ये यज्ञ किये जाते थे। राजा राजसूय यज्ञ करके महाराजा और महाराजा अश्वमेध करके सम्राट् बन जाता था। पुरोहित ब्राह्मण अगणित धन, दास, दासी आदि दक्षिणामें पाकर, तथा राजाओंसे संस्कृत और पूजित होकर खूब सम्पन्न और अधिकार पूर्ण जीवन व्यतीत करते थे। इन पुरोहितोंको प्रसन्न करने, तथा राजाओंके निकट पहुंचने तथा विविध अभिलाषाओंकी पूर्तिके लिए जन साधारण भी अपनी हैसियतके अनुसार यज्ञ करते थे। अथर्ववेदके प्रयोगोंसे ऐसा प्रतीत होता है कि जादू भी यज्ञोंका एक अंग था।

वेदमें सूर्य, सविता, पूषन्, मित्र, भग, वरुण, विश्वकर्मन् अदिति, त्वष्टा, उषस्, अश्वी, इन्द्र, ब्रह्मणस्पति, मरुत्, रुद्र, पर्जन्य, अग्नि, सोम, यम, पितर आदि जिन देवोंका सूक्तोंमें ऋषियोंने वर्णन किया है, उन सूक्तोंमें उन्हें सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् बनानेकी चेष्टा की है। इसका परिणाम यह हुआ कि प्रत्येक देवता परमेश्वर बनने लगा और उनकी मूल भिन्न शक्तिमत्ता लुप्त होगई। यजुर्वेदके यज्ञोंमें अवश्य देवोंकी पृथक् शक्तिमत्ता वर्णन की गई है। अथर्ववेदमें ये देवता तो जादूके माध्यम हैं, विशेष कर भृगु, अंगिरस, और अथर्वन्, तो बडे भारी जादूगर प्रतीत होते हैं। ऋग्वेदके वसिष्ठ भी जादूमें दखल रखते हैं। वैदिक देवता जो प्राचीन आर्य पुरुष ही थे, वेदोंमें भौतिक जीवनसे संबंध रखनेवाली भौतिक शक्तियोंमें कल्पित किये गये हैं। अग्नि और सूर्य शुद्ध चमत्कृतिजनिता चेतनशक्तिकी भांति कल्पित किये गये हैं। मित्र और वरुण क्रमश: दिन और रातके स्थान पर आरोपित हुए। सवितृ वर्ष ऋतुके पृथक् सूर्यके रूपमें परिचित हुए। पूषण धान्य वनस्पतियोंका पोषण करने वाले वसन्त कालीन सूर्यमें आरोपित हुआ। उषस् प्रभातकी देवी, इन्द्र लडाकू विजयी, अधिक मात्रामें सोम पीनेवाला। मरुत् मारनेवाला इन्द्रका सहचर हुआ। रुद्र पहले तूफानका देवता था, अदिति अखण्ड आकाशका। यद्यपि सभी देवताओंके भौतिक अधिष्ठानकी पूरी तौरपर नहीं बैठाई जासकी, भौतिक जीवनकी भौतिक आकांक्षाएं पूरी करनेके लिए साधन प्राप्त करनेकी रीति यही होसकती थी कि इन देव पुरुषोंमें भौतिक शक्तिको आरोपित किया जाय। पहले अग्नि और सूर्य पर बहुत सी भौतिक आवश्यकता अवलंबित थी, इसलिए वैदिक ऋषि और गृहस्थोंमें अग्निहोत्रका प्रचलन हुआ।

धर्मकी महत्ता

[लेखक— श्री शिवनारायण सक्सेना, एम. ए., विद्यावाचस्पति सि. प्रभाकर]

दैनिक व्यवहारकी सफलताके लिये यह आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्तिके साथ सहानुभूति, प्रेम, ममता, स्नेह, दयालुता, और सत्यताका व्यवहार किया जावे। ऐसा करनेसे बदलेमें न चाहते हुये भी दूसरा पक्ष पूर्ण शिष्टताके साथ अच्छा व्यवहार करेगा। जैसा बोया जाता है वैसा ही तो काटनेको मिलता है। कहा भी यही जाता है कि जैसा व्यवहार दूसरोंसे चाहते हो वही दूसरोंके साथ करो। यही सर्वोत्तम आदर्शवाद है। व्यवहार कुशलता और सज्जनताके कारण पारिवारिक और सामाजिक जीवनमें मधुरता आजाती है। सभी प्राणियोंमें समताकी भावना रखते हुये दुःखमें दुःखी और सुखमें सुखी होना ही तो सबसे बडा धर्म माना जाता है। विश्वबन्धुत्वकी भावना अथवा संसारको एक बडा कुटुम्ब समझकर स्वयंको परिवारकी सबसे छोटी इकाई समझकर कर्तव्यपालन करते रहना तथा सभी कार्योंका उत्तरदायी ईश्वरको समझना विचारोंकी श्रेष्ठता ही कहलाती है।

धर्म और अधर्मका ज्ञान होते हुये भी मानवके कदम आज अधर्मकी ओर ही बढते जारहे हैं। वैसे प्रत्येक कार्यको करनेसे पूर्व अन्तरात्माकी ध्वनि सत्य और असत्यका निर्णय कर देती है पर उसे न सुने और न समझे तो क्या लाभ होनेवाला है। भारत तो धर्मप्रधान देश प्रारम्भसे रहा है और आज भी है, यहांपर पुरुषोंसे अधिक धार्मिक प्रवृत्ति महिलाओंकी है पर आज तो धर्मका स्वरूप ही बदला हुआ दिखाई दे रहा है, धर्मकी ओटमें शिकार खेलना बहुतसे व्यक्तियोंका व्यवसाय बनता जारहा है। धर्मकी उन्नति चाहनेवालोंके लिये काकासाहब कालेलकरने 'जीवन साहित्य' में ठीक ही कहा है 'आज हिन्दू धर्मका उत्कर्ष चाहनेवाले प्रत्येक मनुष्यका यही प्रथम कर्तव्य है कि वह इस बातकी कोशिश करे कि उसके समाजमें धर्मका शुद्ध स्वरूप प्रकट हो। जिसमें सत्यकी निर्ममता नहीं, त्यागकी अकलमन्दी नहीं, उदारता की सुगन्ध नहीं, वहां धर्म है ही नहीं— यह हमें निश्चित रूपसे समझ लेना और लोगोंको समझाना भी चाहिये। हिन्दू धर्मके संस्करणका समय आगया है क्योंकि उसपर जमी हुई गर्द उसका दम घोंट देनेको है।'

आज धर्मको कौन कहे, अपने स्वार्थकी पूर्तिके लिये बुरे भले सभी प्रकारके यत्नोंसे सफलता प्राप्त करनेमें नहीं हिचकिचा रहे हैं। भौतिक प्रगति भी बुरी नहीं है यदि उस पर अंकुश रखा जावे। भौतिक प्रगतिमें यदि धर्मका पुट जोड दिया जावे तो सोनेमें सुगन्ध आने लगे। जीवनको चलानेके लिये धनकी आवश्यकता पडती है, इसमें सभी एकमत हैं पर बेईमानी, दगाबाजी, मारकाट, लूटमार या अन्य ऐसी ही अराजकतावादी कार्योंकी सहायता लेनेसे कोई लाभ नहीं है। धनको धर्मके साथ कमाया जाय और धार्मिक भावना से ही काम किया जावे, तो स्वयंकी भलाईके साथ साथ समाज कल्याण भी है। ईमानदारी, न्याय, परिश्रमकी कसौटियों पर कसी जानेवाली कमाई ही श्रेष्ठ मानी जासकती है क्योंकि ऐसे धन अर्जित करनेमें स्वयंकी आत्माको तो संतोष होगा ही, साथ साथ दूसरोंके अधिकारोंका हनन भी न होगा। कमानेके साथ धन व्यय करनेमें भी तो धर्मकी मर्यादाका प्रश्न उठता है परिश्रमकी कमाई मदिरा, धूम्रपान, वैश्यागमन, जुआ, लाटरी या सिनेमा आदिमें बुरी तरह उडा दी जावे तो धनकी बरबादी ही कही जावेगी। वास्तवमें बात तो यह है कि अपनी आवश्यक और आरामदायक आवश्यकताओंको पूर्ण करनेके बाद बची हुई धन राशि अपनी नहीं, वरन् समाजकी माननी चाहिये और समाजहितमें व्यय करनेके लिये निःसंकोच तैयार रहना चाहिये।

अधर्मके साथ कमाया गया धन अपने विचारोंमें विकृति तो पैदा करता ही है, परिवारवाले भी पीछे नहीं रहते। दूसरोंके अधिकारोंको छीनना या दूसरेके सम्पत्तिके लिये नियत खराबवाला पाप ही माना जायगा। यही भावना तो आजके पूँजीवादमें छिपी हुई है। धनका असमय वितरण तथा अमीरोंको आश्रय देना इसी बातको सिद्ध करता है

फिर किस प्रकार निर्धनी किसान और मजदूर अपने रक्तको अमीरोंके द्वारा चुसानेसे बचा सकेंगे। साम्यवाद भी कम नहीं है यह भी हिंसा, तथा छीना झपटीका सहारा लेकर समाजमें खूनकी नदियाँ बहाना चाहता है। महात्मा विदुरने ' विदुर नीति ' में राज्यकी सारी क्रियाओंका मूल धर्म ही बताया है-

धर्मेण राज्यं विन्देत धर्मेण परिपालयेत् ।
धर्म मूलां श्रियं प्राप्य न जहाति न हीयते ॥

२।३१

अर्थात्— धर्मसे ही राज्य प्राप्त करें और धर्मसे ही उसकी रक्षा करें; क्योंकि धर्ममूलक राज्य लक्ष्मीको पाकर न तो राजा उसे छोडता है और न वही राजाको छोडती है।

राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन्ने तो देशके संकट कालमें भी धर्मका पल्ला पकडनेकी सलाह दी है, ' जब देशकी सुरक्षा खतरेमें हो तो यह और भी अधिक आवश्यक हो जाता है। यदि हममें धर्मका कुछ भी अंश हो तो हम किसी भी प्रकारके आक्रमण या भयसे अपनी रक्षा कर सकेंगे··· यदि देश विजयी होना चाहता है तो उसे धर्मका अवलम्बन लेना होगा। '

वास्तविक सुख व शान्तिका स्रोत धर्म ही तो है। मानव जीवनकी सार्थकता भी अपनेको धर्ममय बनानेमें ही है। धर्मको छोड प्रगतिके इच्छुक व्यक्तियोंने कभी सफलता पाई हो ऐसा इतिहाससे सिद्ध होना सम्भव नहीं। यदि एक दो सफलता मिली भी हो तो बादमें प्रायश्चित्त और पश्चातापकी अग्निमें उन्हें भी झुलसना पडा होगा। धन और भोग विलासमें फँसे हुये व्यक्तियोंको धर्मकी महत्ता कैसे ज्ञात हो सकती है ? दैनिक कर्मकाण्डतक धर्मके कार्योंका अर्थ निकालना संकुचित दृष्टिकोणका ही परिमापक माना जायगा। अपने क्षेत्रमें कर्तव्यका ठीक तरहसे पालन करना ही सच्चा धर्म है। दूकानपर बैठकर शुद्ध घीमें डालडा मिलाया जाय, गेहूँ के आटेमें मक्काका आटा, या दूधमें पानी मिलाकर बेईमानीसे दुगुने चौगुने किये जावें, फिर दूसरी और सुबह शाममें मन्दिरमें आरती करने और घन्टा हिलाने जावे तो यह दिखावटी सारा कर्मकाण्ड नरककी ओर ले जानेवाला है। भजन, पूजन, यज्ञ आदि सारे कार्य मनकी चंचलताको रोकने तथा आत्माकी शुद्धिके लिये है यदि ऐसा न हुआ तो प्रयत्न व्यर्थ ही माना जावेगा।

चाहे कोई व्यक्ति तीन बार सन्ध्या न करता हो। मासमें चार उपवास न करे, गंगा स्नान न करे अथवा मन्दिर या गिरजाघरमें दो बार न जावे पर वह जहाँ भी है अपने कर्तव्य पालनमें दृढ है तो वहां उसकी पूजा और भजन है। स्वयं सुधरते हुए बाल बच्चोंमें अच्छी आदतोंका निर्माण करना ही प्रमुख धर्म माना गया है। क्योंकि परिवार ही समाजकी एक इकाई, और नागरिककी प्रथम पाठशाला है, परिवार यदि सुशिक्षित, सुसम्पन्न एवं सभ्य है तो समाज और राष्ट्रकी प्रगतिमें तो बाधा न आवेगी, क्योंकि परिवारसे समाज और समाजसे ही राष्ट्र बनता है। इस प्रकारका कर्तव्य ही धर्मका आदर्श रूप है।

धर्मके बिना सुखकी आशा करना भी व्यर्थ है। जीवनको सुखी बनानेके लिये धर्मके अनुसार कार्य करने पडते हैं। और जो धर्मात्मा हैं उनका सत्संग प्राप्त हो जावे तो कहना ही क्या ? यदि ऐसा न हो सके तो उनका साहित्य हमारे जीवनमें परिवर्तन ला सकता है। धर्मसे बढकर विश्वमें अन्य कोई भी वस्तु नहीं है। अतः नीतिकारने भी धर्मका त्याग न करनेका ही आदेश दिया है जो विचार करने योग्य है—

इदं च त्वां सर्वपरं ब्रवीमि
पुण्यं वद तात महाविशिष्टम् ।
न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्
धर्मं जह्याज्जीवितस्यापि हेतोः ॥

तात ! अब मैं तुम्हें यह बहुत ही महत्वपूर्ण एवं सर्वोपरि पुण्य-जनक बात बता रहा हूँ- कामनासे, भयसे, लोभसे तथा इस जीवनके लिये भी कभी धर्मका त्याग न करे।

संसारपर विजय कौन प्राप्त कर सकता है ?

[लेखक— श्री भास्करानन्द शास्त्री, सिद्धान्त-वाचस्पति, प्रभाकर, स्वाध्याय मण्डल पारडी (गुजरात)]

महाभारत युद्धके होनेके मूल कारणोंमें जूआ खेलना भी एक प्रधान कारण था। वेदने उपदेश दिया है, 'अक्षैर्मा-दीव्यः' ऐ संसारके लोगो अगर तुम ऐश्वर्य प्राप्त करना चाहते हो तो जूआ मत खेलो। महाराजा युधिष्ठिर बडे ही धर्मात्मा और न्यायप्रिय सम्राट् थे, उनके चारों भाई भी बलवान और शक्तिशाली थे। भीम शारीरिक बल और गदायुद्धमें उस समय संसारमें प्रथम नम्बर पर था। अर्जुन के गाण्डीवकी टंकार सुनकर विश्व काँप उठता था, वह धनुर्धारियोंमें सर्व श्रेष्ठ धनुर्धारी था। नकुल और सहदेव भी अद्वितीय वीर और अनेक विद्याओंके अन्दर पारंगत थे, महारानी द्रोपदी भी रूप, लावण्य और स्त्रियोचित श्रेष्ठ गुणोंमें उस समयकी स्त्रियोंमें अपना पहिला क्रमांक रखती थीं। इनके भाई और पिता भी श्रेष्ठ वीरों और महारथियों-मेंसे थे। इतना सब कुछ होते हुये भी महाराजा युधिष्ठिर को अपने वीर भाइयों और महाभागा द्रोपदीके साथ जंगल-में अनेक कष्ट भोगने पडे और अनेक प्रकारसे अपमानित जीवन व्यतीत करना पडा। उसका मूल कारण जूआ खेलना ही था।

जिस समय महाराजा युधिष्ठिरने राजसूययज्ञ किया उसमें सम्पूर्ण जगत्के बडे बडे राजा महाराजा आये उसमें दुर्यो-धन भी सम्मिलित हुआ था। मयदानवके रचे महलमें प्रवेश करने पर जहाँ पानी नहीं था वहाँ भ्रमवश वह पानी समझ कर अपने शरीरके नीचेके भागके कपडेको ऊपर उठाने लगा और जहाँ पानी था वहाँ यह समझा कि यहाँ पानी नहीं है उसमें जा गिरा और अपने सब कपडोंको गीला कर लिया। उसके इस हालतको देखकर ऊपर अट्टेपर बैठी हुई द्रोपदी अपनी सहेलियोंसे बहुत ही आहिस्तेसे यह कह बैठी कि, देखा 'अन्धेके तो अन्धे ही होते हैं' द्रोपदीने कहा तो बहुत ही धीरेसे लेकिन दुर्भाग्यवश दैवियोगसे उसके उस कटु और हृदयको विदीर्ण कर देनेवाले शब्दको दुर्योधनने सुन लिया और मन ही मनमें अत्यधिक दुःखी हुआ। अपने महलमें जाकर अपने मामा शकुनीको बुलवाया। शकुनीके आनेपर अपने मामा शकुनीके सामने फूट फूटकर, सिसकियां भर-भर कर रोने लगा और कहा 'मामा इस अपमानित जीवनसे मैं मर जाना अच्छा समझता हूँ। द्रोपदीने मेरी वह बेइज्जती की है कि जिसको मैं कभी भी भूल नहीं सकता, उसके कहे हुये शब्द मेरे हृदयको विदीर्ण कर रहे हैं। पाण्डवोंका उत्कर्ष और अपना अपकर्ष अब मुझसे देखा नहीं जारहा है। उस सभामें किये हुये अपमानका प्रतिकार मुझे अवश्य लेना है नहीं तो स्वयंको ही समाप्त कर लूँगा।'

गान्धारके राजा मामा शकुनीके समझाने बुझानेसे दुर्योधनका दुःख कुछ शान्त हुआ। शकुनी उस समय संसारके जूआके खिलाडियोंमें सबसे बडा खिलाडी था, उसने कहा, 'जैसे भी हो तुम युधिष्ठिरको एक बार जूआ खेलनेके लिये बुलाओ फिर मैं तुम्हारे किये हुये अपमानका बदला अच्छी प्रकारसे चुका दूँगा।'

राजा दुर्योधनने महाराजा युधिष्ठिरको जूआ खेलनेका निमन्त्रण दिया, भोलेभाले देवतास्वरूप युधिष्ठिर आकर उस जालमें फँस गये। जूआ खेलने लगे और जूआ खेलते खेलते अपने सब धन, सम्पत्ति, राजपाट, द्रोपदी और चारों भाइयोंके साथ अपने आपको भी हार गये और शर्तके अनुसार १२ वर्षोंतक ज्ञातरूपसे और एक वर्षतक अज्ञातरूपसे बनमें जानेके लिये विवश हुये।

जब महाराजा युधिष्ठिर अपना राज्य, धन, ऐश्वर्य सबको जूएमें हारकर अपने चारों भाइयों और द्रोपदीके साथ जंग-लमें चले गये और जंगलमें ही जिस तिस प्रकारसे जीवन यापन करने लगे। इस प्रकार रहते हुये कुछ समय व्यतीत हो गया। एक दिन एक ऋषिके आश्रममें पहुँचे। युधिष्ठिरने ऋषिका मानके साथ अभिवादन किया और हाथ जोडकर ऋषिसे बोले—

ऋषिवर ! आजकल हम सबका हृदय बहुत अशान्त है। आप देख रहे हैं हम सबोंकी कैसी शोचनीय अवस्था हैं, न रहनेके लिये कोई मकान न ठहरनेके लिये कोई व्यवस्था। इधरसे उधर, उधरसे इधर, यत्र तत्र जंगलोंमें ही भटकते

रहना पड रहा है। माता कहीं रहती हुई अपने कुभाग्यपर रो रही है, और बच्चे कहीं अनाथसे होकर रह रहे हैं। ऐसा महान दुःख सहा नहीं जा रहा है। क्लेशसे आकुल होकर अब ऐसा मनमें आ रहा है कि जीवनको ही अब समाप्त कर लूं।

युधिष्ठिरके दर्द भरे शब्दोंको सुनकर ऋषिका भी दिल भर आया, वे मन ही मनमें विचार करने लगे कि यह कैसी विचित्र अवस्था है। जो कुछ ही दिनों पूर्व विश्वका एक महान् विजयी सम्राट् था, अतुल सम्पत्तिका मालिक था। वह आज जंगलका पथिक बना हुआ, गृहसे भी रहित होकर अपमानित जीवन बिताते हुये जंगलमें भटक रहा है। यह सब भाग्यका ही खेल है।' पुनः स्पष्ट शब्दोंमें युधिष्ठिरसे बोले, 'हे युधिष्ठिर ! तुम तो वेदोंशास्त्रोंके जाननेवाले विद्याव्रत स्नातक एवं धर्म और न्यायसे प्रजाका पालन करनेवाले श्रेष्ठ सम्राट् थे। तुम तो यह भी जानते थे कि वेदमें उपदेश है, 'अक्षैर्मादीव्यः' जूआ मत खेलो। इस उपदेशको जानते और समझते हुये भी आप कैसे जूआ खेल बैठे यह बात मेरी समझमें नहीं आ रही है। उसका ही यह परिणाम हुआ कि आप सबकी ऐसी शोचनीय अवस्था हुई है।

युधिष्ठिर— ऋषिवर ! जो कुछ होना था वह होगया, अब आगेके लिये कुछ मार्ग बतायें, उसके लिये अपने उत्तम उपदेशसे हम सबोंको आत्मशान्ति प्रदान करें आपसे हमारी यही विनम्र प्रार्थना है।

ऋषि— हे युधिष्ठिर ! विपत्तिमें धैर्य धारण करना धर्मका प्रथम लक्षण है, अतः निराश और दुःखी न होकर सबसे पहले धैर्य धारण करो और विचार करो कि आगेके लिये क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये। मुसीबतमें भी समयसे उचित लाभ उठाओ, तैयारी करो और अपनेको इस योग्य बनाओ कि पुनः विश्व विजयी बन सको, संसारमें खोई हुई अपनी शुभ्रकीर्ति पुनः प्राप्त कर सको। संसार पर विजय प्राप्त करनेवाला व्यक्ति किन किन कर्मोंको करें आज मैं उसका तुम्हें समुचित उपदेश देने लगा हूँ, उसको अब ध्यान पूर्वक सुनो और उन वचनोंको सुनकर अपने जीवनमें लानेका प्रयत्न करो निश्चयसे पुनः विश्व-विजयी बन जाओगे यह निश्चय रखो। वे कर्म जो विश्वविजेता बननेवालोंके लिये करने चाहियें आठ हैं। ऋषि अपने शब्दोंमें यों कहते हैं—

सम्यक् संकल्प सम्बन्धात्सम्यक् चेन्द्रियनिग्रहात्।
सम्यग्व्रत विशेषाच्च सम्यक् च गुरुसेवनात्॥
सम्यगाहार योगाच्च सम्यक् चाध्यनागमात्।
सम्यक् कर्मोपसन्यासात् सम्यक् चित्त निरोधनात्॥
एवं कर्माणि कुर्वन्ति संसार विजगीषवः।

महा. व. अ. २ श्लोक ७८।८०।८१

ऋषिने जो युधिष्ठिरको आठ कर्मोंमेंसे पहिला कर्म 'सम्यक् संकल्प सम्बन्धात्' इसका उपदेश दिया। आज मुझको उस एक कर्म पर ही वर्तमान समयमें विचार करना है। जो भी संसारमें विश्वविजयी बनाना चाहता है उसको सर्व प्रथम अपनी संकल्पशक्तिको दृढ मजबूत बनाना चाहिये। अपने जीवनके उद्देश्यको निश्चित करना चाहिये। जिसके जीवनका कोई भी उद्देश्य नहीं, लक्ष्य नहीं वह संसारमें कभी भी विश्वविजयी नहीं बन सकता। संसारमें जितने भी महापुरुष हुये उन्होंने सर्व प्रथम अपने जीवनका एक महान् लक्ष्य (उद्देश्य) बनाया और उसी लक्ष्यको लेकर आगे बढे और अनेक कठिनाइयों, दारुण दुःखोंको झेलते हुये, उसे सहन करते हुये अन्तमें विजयी हुये।

जरा पुराने इतिहासका ही अवलोकन कीजिये। सर्व प्रथम महाराजा मर्यादा पुरुषोत्तम रामको ही लीजिये। एकबार जब रामचन्द्रजी कई ऋषियोंके साथ एक जंगलसे दूसरे जंगलमें जा रहे थे, एक स्थान पर हड्डियों-पञ्जरोंका एक बडा ढेर पहाड सा लगा हुआ देखा। रामने ऋषियोंसे पूछा ! 'हे ऋषि-वरो ! यह हड्डियोंका पहाडसा कैसे बन गया है। ' ऋषियोंने उत्तर दिया, 'राजपुत्र ! आजकल राक्षसोंका महान् अत्याचार, पाप अत्यधिक बढ गया है। वे राक्षस इस जंगलमें ब्राह्मणों, ऋषियों-मुनियों, मनुष्यों और गौवोंको मार मार करके, उनके मांसका भक्षण करके शेष हड्डियों और पञ्जरोंको यहां डालते गये जिससे यह पहाडसा ढेर जमा हो गया है। कोई श्रेष्ठ क्षत्री महाराजा इस विश्वमें नहीं रहा है जो इन दुष्ट राक्षसोंको समाप्त करके गो, ब्राह्मणों और ऋषियोंकी प्राण रक्षा कर सके। हम सब ऋषियोंके याग, यज्ञको भी यह क्रूर राक्षस नष्टभ्रष्ट करते रहते हैं। हम सबोंकी अत्यन्त शोचनीय अवस्था है।'

मर्यादा पुरुषोत्तम रामने उन ऋषियोंके समक्ष हाथ उठा कर प्रतिज्ञा की, 'जबतक मैं इन गो, ब्राह्मण भक्षक दुष्ट राक्षसोंको पृथ्वी परसे समाप्त नहीं कर दूंगा, तब तक मैं राम, राम नहीं। मैं राक्षसों और उनके द्वारा होनेवाले इन घोर अत्याचारोंको समाप्त करके ही दम लूंगा।' रामने दुष्ट राक्षसों को भूतलसे समाप्त करनेका एक महान् उद्देश्य बनाया और संसारके लोगोंने देखा मर्यादा पुरुषोत्तम रामने, राक्षसराज

रावण और उसकी सब सेनाको समाप्त करके दुष्ट राक्षसोंसे पृथ्वीको शून्य किया और विश्वके विजयी श्रेष्ठ आर्य सम्राट् बने।

राम कितने महान् थे इसका पता हमको उस समय लगता है जब रामचन्द्र अपने पिता महाराजा दशरथके आज्ञानुसार राज्यको त्याग कर चौदह वर्षोंके लिये जंगलमें चले जाते हैं, अयोध्यासे चलकर चित्रकूट पर्वत पर पहुंचते हैं। उसी बीच रामके शोकमें महाराजा दशरथका स्वर्गवास हो जाता है। रामके भाई भरतको उनके ननिहालसे बुलाया जाता है। वे शीघ्र अयोध्या पहुंचते हैं। अयोध्याकी शोचनीय अवस्थाको देख अत्यधिक दुःखी और व्याकुल हो उठते हैं। पिताका मृतक संस्कारादि करके, अयोध्यावासियोंके साथ रामको पुनः जंगलसे लौटा लानेके लिये चल पडते हैं। चित्रकूट पर पहुँचते हैं, रामके पवित्र चरणोंमें अपने मस्तकको रख देते हैं और कहते हैं 'भाई राम ! मेरी अनुपस्थितिमें कुलको कलङ्कित करनेवाली माताकी गलतीसे बडा ही अनर्थ हुआ है। उसके इस अनर्थकारी काममें मेरी किसी भी प्रकारकी कोई भी सम्मति नहीं थी। मुझको इन बातोंका लेशमात्र भी पता नहीं था, इसके ही कारण पूज्यपाद पिताजी स्वर्ग सिधारे। राज्य आपका है, मेरा उस राज्यसे कोई भी सम्बन्ध नहीं, मैं तो आपका आज्ञाकारी सेवक हूँ। आप यहाँसे चलकर अयोध्याका राज्य करें, आपसे मेरी यही विनम्र प्रार्थना है।'

कई दिनोंतक राम और भरतका शास्त्रार्थ चलता रहा। दोनों भाई राज्यका गेंद बना कर एक दूसरेकी ओर ठोकर मारते रहे। कितना विचित्र दृश्य था। अन्तमें रामकी ही विजय होती है। भाई भरतको अयोध्या जानेके लिये विवश होना पडता है। रामकी आज्ञासे अयोध्यामें जानेके पूर्व भरत हाथ जोडकर रामसे निवेदन करते हैं। 'भ्रातृवर ! मुझको राजकाजका विशेष कुछ भी ज्ञान नहीं आप मुझको बतायें आपके राज्यका संचालन आपकी अनुपस्थितिमें किस प्रकारसे करूँ ?' उस समय राम अपने छोटे भाई भरतको राजनीतिका उपदेश करते हैं जो सुवर्णमय अक्षरोंमें लिखने योग्य है। यथा—

परस्त्री मातेव, क्वचिदपि न लोभः परधने ।
न मर्यादाभङ्गा, क्वचिदपि न नीचे स्वभिरुचिः॥
रिपौ शौर्यं धैर्यं, विपदि विनयं सम्पदि सदा ।
इयं चाज्ञामेस्ति, भरत नितरां पालय प्रजाम् ॥

'हे भरत ! दूसरेकी स्त्रीको माताके तुल्य समझना। दूसरेके धन पर कभी भी लोभ न करना। आर्योंके श्रेष्ठ मर्यादाका कभी भी उलंघन न करना। नीचोंके साथ कभी प्रेम न करना, अगर शत्रु राष्ट्र पर आक्रमण कर दे तो वीरताके साथ उसका सामना करना। आपत्तिके समय धैर्य धारण करना और सम्पत्ति, ऐश्वर्यमें नम्रता विनयका आश्रय लेना। यह मेरी आज्ञा है, इस आज्ञाका पालन करते हुये राज्यका रक्षण करते रहना।' यह कितना महान् उपदेश है रामका भरतके प्रति।

रामका जीवन इतना महान् क्यों बना; वह दृढ प्रतिज्ञ थे, जो एकवार निश्चय कर लेते थे, जो उद्देश्य बना लेते थे उसको पूर्ण करनेमें दिल-जानसे लग जाते थे। इसी कारण राम विश्वविजयी सम्राट् बने।

दूसरा उदाहरण भगवान योगीराज श्रीकृष्णचन्द्रजीका लीजिये। वे विश्वके महान विभूतियोंमें क्यों गिने गये ? एकबार अपने उद्देश्यके सम्बन्धमें महाराजा युधिष्ठिरसे कहते हैं—

नत्वहं कामयेराजन् न स्वर्गं न पुनर्भवं ।
कामये दुःखतप्तानां प्राणीनां आर्तनाशनम् ॥

'हे राजन् ! मुझको अपने निजीसुखके लिये राज्यकी इच्छा नहीं है, स्वर्ग नहीं चाहता, न मुक्तिकी ही कामना करता हूँ, केवल दुःखी प्राणियोंके दुःखोंको दूर करना ही मेरे जीवनका उद्देश्य है।' इसी कारण श्रीकृष्णचन्द्रजी अपनी महान् शक्तिसे विश्वकी विभूतियोंमें प्रथम स्थान प्राप्त कर सके।

तीसरा उदाहरण महर्षि दयानन्दका ले सकते हैं। इन्होंने भी तीन बातोंको पूर्ण करनेकी प्रतिज्ञा की अपने जीवनका लक्ष्य बनाया— (१) सच्चे शिव (परमात्मा) को प्राप्त करनेकी, (२) मृत्युञ्जय बनकर दिखानेकी, (३) वैदिक धर्मके प्रचारार्थ अपने सम्पूर्ण जीवनको लगानेकी। एक कविने महर्षिके सम्बन्धमें ठीक ही कहा है—

हानिबल, बोनापार्ट, सिकन्दर जितने विश्वविजेता ।
दयानन्दसा हुआ न कोई आत्मबली नरनेता ॥

चौथा उदाहरण महात्मा गान्धीजीका लीजिये जिस समय बैरिस्टर मोहनदास कर्मचन्द गान्धी बैरिस्टरी करते हुये दक्षिण अफ्रीकामें रह रहे थे। उस समय किसी ट्रेनसे एक शहरसे दूसरे शहरमें जानेवाले थे। ट्रेन आई स्टेशनके प्लेटफार्मपर ठहर गई। प्रथम श्रेणीका रेल्वे टिकट ले कर फर्स्ट-क्लासके डब्बेमें जा बैठे। अभी ट्रेनके चलनेमें कुछ मिनटोंकी देरी थी कि एक अंग्रेज भी उनके डब्बेमें आ गया। वह गान्धीजीको देखकर जलभुन गया, लाल पीला होकर बोला, 'इस डब्बेसे नीचे उतर जाओ, दूसरे थर्ड क्लासके डब्बेमें जा कर बैठो। यह डब्बा तुम्हारे ऐसे गुलामों, हिन्दुस्तानियों, काले लोगोंके लिये नहीं है।' गान्धीजीने कहा– "मेरे पास प्रथम श्रेणीका टिकट है, मैं इस सीटपर ही बैठा रहूँगा,

आपको क्या हक है कि मुझे यहाँसे उतारें ।" फिर क्या था, उस समय तो सारे अंग्रेज (गोरे) चाहे वह एक मामूली मजदूर या चपरासी ही क्यों न हो वह अपनेको भारतियोंके लिये सम्राट् पञ्चमजार्जसे कम नहीं समझता था, गान्धीजी दुबले पतले तो थेही उनपर उसका गुस्सा और तेज हो गया, गान्धीजीको हाथोंसे खींचकर बूटकी ठोकरसे ट्रेनके डब्बेसे बाहर प्लेटफार्म पर फेंक दिया, गान्धीजीके आगेके दो दाँत टूट गये वे बेहोश हो गये, मुँह खूनसे लहूलोहान हो गया। होशमें आनेपर गान्धीजीने उस समय प्रतिज्ञा की और अपने जीवनका एक उद्देश्य बनाया कि 'इस गुलामी (पराधीनता) के कलंकको, काले, गोरेके भेदको मिटा करके छोडूंगा और भारतको पूर्ण स्वतन्त्र करा करके रहूँगा।' इस महान् उद्देश्यको धारण करनेके कारण ही गान्धीजीके जीवनमें धीरे धीरे परिवर्तन होना प्रारम्भ हुआ, ब्रह्मचर्य, सत्य, अहिंसादि व्रतोंको अपनाये, हैट, कैट, नकटाई, कालर आदि अंग्रेजोंके दिये हुये गुलामीके प्रतीकोंको छोडकर एक धोती और लंगोटीपर आ गये। बैरिस्टर मोहनदास कर्मचन्द गान्धीसे बदल कर महात्मा गान्धीके नामसे विश्वमें विख्यात् हुये और भारतको पूर्ण स्वतन्त्र करावाये।

पाचवाँ उदाहरण बाबू सुभाषचन्द्र बोसका भी हमारे समक्ष है। जब वह आई. सी. एस. की परीक्षा उत्तीर्ण करके लण्डनसे स्विटझरलैण्डमें सैरसपाटेके लिये गये। स्विटजर-लैण्ड यूरूपका काश्मीर माना जाता है। गर्मीके दिन थे घूमते वामते, रुकते रुकाते स्विटजरलैण्डकी राजधानी बर्नमें पहुँचे। इधर उधर घूमते हुये नगरकी शोभा देख रहे थे कि वहाँकी रहनेवाली एक पढी लिखी शिक्षित स्त्री उनके सामने आ उपस्थित हुई और नम्रतापूर्वक अभिवादन करके सुभाषसे बोली– 'बताइये आपका क्या नाम है, किस देशके रहने-वाले हैं, यहाँ किस कार्यवश आये हैं।'

सुभाष– मेरा नाम सुभाषचन्द्र बोस है, मैं भारतवर्षका रहनेवाला हूँ, यहाँ परिभ्रमण, सैर-सपाटेके लिये आया हूँ।

स्त्री– आप कुछ पढे लिखे भी हैं ?

सुभाष– हाँ मैं आई. सी. एस. की सर्वोच्च परीक्षा उत्तीर्ण हूँ।

स्त्री– आश्चर्यान्वित होकर विस्मयपूर्ण नेत्रोंसे नीचेसे ऊपरतक उनको गौरसे देखने लगी।

सुभाष- देवी ! क्या बात है ? तुम इतने आश्चर्यपूर्ण नेत्रोंसे हैरानसी हुई होकर मुझको क्यों नीचेसे ऊपरतक देख रही हो। क्या मेरे पहनावेमें, हैट, कैट, नकटाई, कालर आदिमें कोई त्रुटी तो नहीं रह गई है ?

स्त्री-सुभाषचन्द्र ! आपका सब पहनावा ठीक है, आपके पहनावेमें किसी भी प्रकारकी कोई भी त्रुटी (कमी) नहीं है। आप बडे ही तेजस्वी, योग्य, प्रतिभाशाली दीख रहे हैं। कद भी ऊँचा, शरीर भरा हुआ और गौरवर्ण युक्त है। इतना सब श्रेष्ठ गुण आपमें होते हुये ही मुझे हैरानी इस बातकी हो रही है कि तुम्हारे जैसे श्रेष्ठ प्रतिभाशाली, उच्च-शिक्षा प्राप्त भारतवर्षमें होते हुये भी भारत गुलाम (पराधीन) क्यों है ? हजारों मील दूरसे मुट्ठीभर सत्तर अथवा पचहत्तर हजार अंग्रेज वहाँ पर रहकर पैंतीस करोड भारतियों पर शासन (राज्य) करते हैं, इस बातका मुझे आश्चर्य हो रहा है। मैं आजतक यह समझती थी कि भारतवर्षमें भेड, बकरियोंकी तरह अधिक संख्यामें लोग रहते हैं और उनपर अंग्रेज आसानीसे राज्य करते हैं। लेकिन आज आपको देख-कर मुझे अत्यधिक हैरानी हुई है। बताइये भारत अंग्रेजोंकी गुलामीमें क्यों है ? और आप सब इतनी बडी संख्यामें होकर भी क्या करते हैं ? क्या पराधीनता (गुलामी) के जीवनमें ही आप सब आनन्द अनुभव करते हैं ? मेरे इन प्रश्नोंका उत्तर दें।

सुभाष– (मन ही मन) हमारी और हमारे देशकी कैसी शोचनीय अवस्था है। हम भारतीयोंको दूसरे देशवाले मनुष्य ही नहीं समझते हमको भेड और बकरियोंसे भी बदतर समझते हैं, हमको गुलाम (पराधीन) मानते हैं। क्या गुलामीका जीवन भी कोई जीवन है ? इस गुलामीके जीवनसे मर जाना अच्छा है।

(प्रकट रूपमें) हे देवी ! तुम्हारा कहना सत्य है। हमारी पराधीनताकी कहानी विचित्र है। मैं तुम्हारे सामने आज प्रतिज्ञा करता हूँ कि 'भारतके पराधीनताके कलङ्कको मिटा-नेके लिये अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा दूँगा। जबतक भारतवर्ष पूर्णरूपसे स्वतन्त्र नहीं हो जायगा दम नहीं लूँगा।'

बाबू सुभाषचन्द्र बोसने भारतके पराधीनताके विरुद्ध लडाई छेड दी, यहाँसे जर्मनी गये, जर्मनीसे जापान गये। आजाद हिन्द सेनाके प्रधान सेनापति बने। वे और भारतीयोंके हृदय सम्राट् बने। आज भारतका बच्चा बच्चा और प्रत्येक नागरिक, स्त्री पुरुष बाबू सुभाषचन्द्र बोसके महानता श्रेष्ठताको मानता है। उनके महान् बलिदानके सामने श्रद्धापूर्वक अपने मस्तकको झुकाता है। बाबू सुभाषचन्द्र बोसने 'सम्यक् संकल्प सम्बन्धात्' इसको अपने जीवनमें पूर्ण स्थान दिया तभी इतने महान्, अग्रणी, सेनानी नेता और प्रत्येक भारतीयोंके हृदय सम्राट् बन सके। अतः संसार पर विजय प्राप्त करने-वाले व्यक्तिके लिये 'सम्यक् संकल्प सम्बन्धात्' इस प्रथम उपदेशको अपने जीवनमें लानेका प्रयत्न करना चाहिये। तभी वह संसार पर विजय प्राप्त कर सकता है। 卐 卐 卐